सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52; अंक : 6
सितम्बर 2019

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.

प्रकाशन तिथि [illegible] मूल्य = एक प्रति : [illegible] द्विवार्षिक : [illegible]

अमृतकण

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख:।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/3)

अर्थात् तुम्हीं स्त्री हो, पुरुष भी तुम्हीं हो, तुम कुमार, तुम कुमारी भी हो और तुम्हीं दण्ड का सहारा लिये हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम्हीं हो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।

(गीता 6/29)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

◆ ◆ ◆

यद्यत् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्।।

(गीता 10/41)

मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्ति: पृष्ट गिरेवि। उर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वस्मृतमस्मि। द्रविणाँ सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षित:।

(तै.उपनिषद् 1/10)

मैं (संसार रूप) वृक्ष को हिलाने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के सदृश है। मैं वह हूँ जिसके ज्ञान का पवित्र (प्रकाश) ऊँचा उदय हुआ है, मानों सूर्य में है। मैं सुमेधा हूँ, अमृत हूँ, क्षीण न होने वाला।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 52 सितम्बर 2019 अंक : 06

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्व भूतेषु गूढः।
यस्मिन युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाश शिछनन्ति।।

अर्थात् वही समय पर समस्त ब्रह्माण्डों की रक्षा करने वाला, समस्त जगत का अधिपति और समस्त प्राणियों मे छिपा हुआ है। जिसमें वेदज्ञ, महर्षिगण और देवता लोग भी ध्यान द्वारा संलग्न हैं। उस परमदेव परमात्मा को जानकर ऐसे ही ध्यान द्वारा मनुष्य मृत्यु के बन्धनों को काट डालता है।

–श्वेता0 उपनिषद्

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	5
3.	श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	9
4.	श्रीमती सत्यभामा कैंसर फ्री – जगदीश राए बंसल	12
5.	कुसंग से बचिए सत्संग कीजिए – स्व. श्री हनुमान प्रसाद	16
6.	अन्तर्ज्ञान अथवा दिव्य दृष्टि – श्री लालजीराम शुक्ल	18
7.	संकल्प-शक्ति – श्री जगदीशनारायण उपाध्याय	23
8.	पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम् – बौद्ध सूत्र-सार	37
9.	वरिष्ठ गुरु भाई श्री दुर्गा सिंह तोमर नहीं रहे	38
10.	आश्रम समाचार	39
11.	योग-आसन	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्या योग और अधिकार भेद

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' अध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझ कर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग **'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना'** के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों के आधार पर अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। हमारी यह योग विद्या, जिसका उपदेश भगवान सदाशिव के सत्संकल्प से आनन्दकंद श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने हम सबको किया, इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान–विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने **'योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः'** कह करके योग–दर्शन में योग की परिभाषा बतलायी। चित्तवृत्ति का निरोध अर्थात् चित्त की समस्त वृत्तियों का नितरांरोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई समस्त चित्तवृत्तियों का बिल्कुल–बिल्कुल रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मक होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण–ये तीनों प्रकृति से उत्पन्न–सम्भव गुण हैं। ये तीनों गुण ही मनुष्य को, साधक को और योगी को मलिन रखा करते हैं। सतोगुण प्रधान चित्त आत्म स्वरूप अध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। वहाँ इसके विपरीत रजोगुण और तमोगुण प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य का अनुगामी होकर प्रेम मार्ग की ओर चलता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण–प्रवृत्तियों को हटाकर चित्त–वृत्ति का निरोध करता है एवं अपने आपको क्रमशः समाधि का अभ्यास करते हुए कैवल्य की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना/निस्त्रैगुण्यता प्राप्त करना ही योगी का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले मानव–मात्र का हो सकता है। इसका किसी मजहब या सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः साधक को मननशील होना चाहिए। उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी या पारसी है, पुरुष है अथवा स्त्री है। प्रत्येक मननशील मानव योग का अधिकारी है। योग का सच्चा जिज्ञासु योगोपदेशक योग्य सच्चे सद्गुरु की शरण लेकर योग का अभ्यास कर सकता है। योग में प्रवेश कर लेने

के बाद श्रद्धापूर्वक नियमानुवर्तिता के साथ दृढ़तर अभ्यास में लगा हुआ साधक योग की पराकाष्ठा को पाकर ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा हो जाया करता है। अखिलात्मा योग-योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्यात्म में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बताया है-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

युक्त योगी वह कहलाता है जो ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को प्राप्त हो गया है। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से दिखाई देते हों। किन्तु योग की यह स्थिति सद्गुरु के कन्ट्रोल में रहकर क्रमशः योग के दृढ़तर अभ्यास से प्राप्त होती है।

जो साधक अपनी साधना के द्वारा प्रकृति के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। और जो साधक अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्मसाक्षात्कार कर लेता है, एवं प्रातिभ, श्रवण, वेदना, आदर्श आदि-आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है।

ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा होकर योगी कूटस्थ स्थिति को प्राप्त हो जाता है। उसकी बुद्धि आत्माकार बनी रहने लगती है। किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता है। वह वासना-तृष्णा के जाल से परे हो जाता है। वह प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी योग की पराकाष्ठा की स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद समाप्त हो जाया करते हैं।

अतः योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है। पृथ्वी पर जन्मा प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकार भेद से इसका अधिकारी है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने अधिकार भेद को अवश्य माना है। जिसका अर्थ है साधक की योग्यता-क्षमता। इसका सम्बन्ध जाति-वर्ग अथवा स्थान और मत अथवा मजहब से नहीं है। प्रत्युत साधक की योग्यता और क्षमता से है। जैसे पहली कक्षा का विद्यार्थी पहली की पढ़ाई पढ़कर उत्तीर्ण होकर दूसरी कक्षा में प्रवेश पा जाता है। उसी प्रकार वह शनैः शनैः कक्षाओं को उत्तीर्ण कर एम.ए. व आचार्य की डिग्री पा लेता है। अस्तु! योग-विद्या का अभ्यासी भी शनैः शनैः अभ्यास को बढ़ाता हुआ अपने परम लक्ष्य को पा जाया करता है। अधिकार भेद का ज्ञान सद्गुरु को होता है। वह जानते हैं कि शिष्य को किस मार्ग से चलाकर योगाभ्यास कराना है।

सम्पादकीय–

अभिनिवेश (मृत्यु भय)

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

जीव अनन्त काल से जन्मता और मरता चला आ रहा है अतः मृत्यु के समय के भय के संस्कार चित्त में बने रहते हैं। मृत्यु का भय जीव में संस्कारगत रहता है। अभिनिवेश के विषय में पतञ्जलि भगवान् सूत्र देते हैं–

''स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढो–अभिनिवेशः''

योग दर्शन–पाद 2 सूत्र 9

अर्थात् मृत्यु भय संस्कार रूप में चित्त में रहता है। जैसे यह मूर्खों में होता है ऐसे ही विद्वान पुरुषों में भी देखा जाता है। संसार में एक जीव दूसरे का आहार होता है–**जीवो जीवस्य जीवनम्** हर प्राणी में अपने जन्मजा विरोधी प्राणी से भय रहता है। बिल्ली को देखते ही चिड़िया भय से जोर–जोर से आवाज करने लगती है और इधर–उधर उड़ते हुये दूसरों को भी उस के आने की सूचना दे देती है। उन्हें बिल्ली से स्वाभाविक भय है। सृष्टिकर्ता ने कुछ ऐसी ही व्यवस्था बना रखी है। सृष्टि का संतुलन इसी प्रकार से बना हुआ है।

गीता में विभूति योग के अध्याय में भगवान कहते हैं–**'यमः संयमतामहम्'** अर्थात् संयमन–जीवों को कन्ट्रोल या सन्तुलन बनाने वाला मैं यमराज हूँ। हर प्राणी की आयु निश्चित रहती है यदि प्राणी का अन्त न हो तो दुनिया में तिल धरने की भी जगह नहीं रहेगी। व्यक्ति प्रतिदिन लगे सम्बन्धियों को, अपने पड़ोसियों को देह त्यागते हुये देखता है। किन्तु उसे अपने विषय में चिन्ता नही रहती है। पुराणों में एक कथा आती है। वनवास के समय पाण्डवों को प्यास लगती है उनमें से बारी–बारी से एक तालाब पर जाते हैं किन्तु कोई भी वापिस नहीं आता है अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर जाते हैं वहाँ स्थित यक्ष ने कहा–पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो तभी तुम्हें यहाँ से पानी पीने को मिलेगा। यक्ष ने कई प्रश्न पूछे। अन्तिम प्रश्न था। संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया। प्रतिदिन मनुष्य अपने सामने लोगों को यमपुर जाते हुये देखता है किन्तु जीवित व्यक्ति को इस बात से कोई भय नहीं रहता है कि उसे भी यमपुरी जाना है। यही संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य है। युधिष्ठिर के उत्तर से

यक्ष सन्तुष्ट हो गया। उसने अन्य चार भाइयों को भी जीवित कर दिया।

संसार में कोई भी प्राणी शरीर को त्यागना नहीं चाहता। उसे अपने शरीर से अत्यन्त आसक्ति होती है इसे ही देहाध्यास कहा जाता है। सभी प्राणी काल के आधीन हैं समय से बँधे हुये हैं। पुण्यापुण्य के अनुसार ही उसे शरीर मिलता है। योग शास्त्र में महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं—**'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः'** (योग द. पाद 2–13) अर्थात् अज्ञानता के रहते हुये जीव को कर्म विपाक के रूप में जाति (योनि) आयु तथा भोग (सुखदुखादि) प्राप्त होता है। मनुष्य को कर्म करने के लिये जीवन मिलता है। अनेक प्रकार के कर्म करता है किन्तु फल तुरन्त नहीं मिलता। फल भोगने के लिये उसे विभिन्न योनियों में भटकना पड़ता है। मृत्यु के प्रकरण में यम–नचिकेता संवाद समझने योग्य है। नचिकेता के पिता–वाजश्रवस सुन्दर–सुन्दर गौओं का दान कर रहे थे। बालक नचिकेता बार–बार पिता से कहता था मुझे किस को दे रहे हो। पिता क्रोधित होकर बोले। मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ। पिता की वाणी सुनकर नचिकेता यमपुरी चला गया। वहाँ पर यमराज नहीं मिले। बालक ने तीन दिन, तीन रात तक उनकी प्रतीक्षा की। अन्त में यमराज आ गये। उन्होंने बालक नचिकेता का स्वागत किया और तीन वर माँगने को कहा—नचिकेता ने पहले वर के रूप में यमराज से कहा—मुझे पहला वर यह दो कि—मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्त चित्त और क्रोध रहित हो जायें यह मैं पहला वर माँगता हूँ। दूसरे वर के रूप में स्वर्ग का साधन भूत अग्नि विद्या का उपदेश करता हूँ। अब तू तीसरा वर माँग ले। तीसरे वर के रूप में नचिकेता ने आत्मविद्या निरूपण की बात कही किन्तु यमराज ने कहा—यह अत्यन्त गूढ़ विषय है तू इसको छोड़। यमराज ने नचिकेता को कई प्रकार के भोगों के प्रलोभन दिये किन्तु बालक अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस नहीं हुआ। अन्त में अधिकारी जान कर यमराज ने अध्यात्म–ज्ञान का निरूपण किया। यमराज ने ओंकार का उपदेश करते हुये कहा—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति,
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदम् संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।

(कठो–वल्ली 2–15)

अर्थात् सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं जिसकी प्राप्ति के लिये समस्त तपों को साधन बतलाते हैं। जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते

है उस पद को मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ। ॐ ही वह पद है। वही आत्मा है उसका न जन्म होता है न मरता है। वह न अन्य कारण से उत्पन्न हुआ है। वह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत् और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी वह नहीं मरता है। उसी ओम को जान कर योगी ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है। वह आत्मा–

अणोरणी यान्महतो महीयानात्मास्य

जन्तोर्निहितो गुहायाम्

तमक्रतुः पश्यति वीत शोका

धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।

कठो. द्वि. वल्ली 20

वह आत्मा अणु से भी अणु है और महान से भी महान है। जीव के हृदय रूप गुहा में स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की महिमा को देखता है और शोक रहित हो जाता है। योगी कब अमर होता है इस पर कहते हैं।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा पेऽस्य हृदि श्रिताः,
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।

कठो–वल्ली 3–14

जिस समय सम्पूर्ण कामनायें जो उसके हृदय में आश्रित होकर रहती हैं छूट जाती हैं। उस समय वह मरण धर्मा अमर हो जाता है और इस शरीर से ही ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है।

उपनिषदों में अन्यत्र भी कहा है।

मृत्योर्मामृतम् गमय।

अर्थात् मृत्यु की ओर न जाकर विद्वान पुरुष को अमृतत्व की ओर जाना चाहिये।

अमृतत्व की प्राप्ति का उपाय है–

ध्यान योग का अभ्यास एवं इसमें परिपूर्णता।

योग दर्शन में पाँच क्लेशों के आत्यन्तिक नाश के लिये समाधि ही अपरिहार्य बताया है। वह सूक्ष्म एवं कारण शरीरों में आता जाता रहता है। अपनी इच्छा से ही प्राणों का त्याग करता है और ब्रह्म में एकाकार हो जाता है। कारण शरीर गत संस्कारों के क्षय हो जाने पर वह

मुक्तिभाक् हो जाता है।

श्रीमद्भगवद गीता में भी भगवान् कहते हैं—जिन पुण्यात्माओं के समस्त पाप नष्ट हो चुके हैं ऐसे भक्त मुझे पूर्ण समर्पित होकर भजते हैं—

जरा मरण मोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ते।
ते ब्रह्म तद्विदु: कृत्स्नमध्यात्मं कर्मचाखिलम्।

(गीता 7/29)

ऐसे परम परायण भक्त जरा और मरण की मुक्ति के लिये मुझे भजते हैं। वे योगी उस ब्रह्म को भी जानते हैं तथा अध्यात्म को व कर्म के रहस्य को जानते हैं।

योग दर्शन में कैवल्यपाद में एक सूत्र के द्वारा पतञ्जलि भगवान् कहते हैं कि धारणा, ध्यान, समाधि एवं संयम से प्राप्त विवेक ख्याति के उदय होने पर समस्त अविद्यादि क्लेश व कर्म की निवृत्ति हो जाती है **'तत: क्लेश निवृत्ति'** की स्थिति आती है फिर योगी का जन्म मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। ऋतम्भरा ज्ञान संशय, अनुमान से सर्वथा भिन्न अपरोक्ष ज्ञान है जिसमें प्रकृति–पुरुष का भेद पूरा जानने में आ जाता है। विष्णु पुराण में तो आया है—**''विनिष्पन्न समाधिस्तु मुक्ति अत्रैव जन्मनि''**

अर्थात् निर्बीज समाधि वाले को इसी जन्म में मुक्ति मिल जाती है।

जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है। जिनका चित्त परमेश्वर के परमानन्द का अनुभव करता है, उन्हें स्वप्न में भी किंचित मात्र लेश नहीं होता। वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

—श्रुतिसार

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

बालकृष्ण को ऊखल में बाँधकर यशोदा जी घर के कामों में व्यस्त हो गईं। इधर श्यामसुन्दर ने यक्षराज कुबेर के दोनों पुत्रों नलकूबर और मणिग्रीव जिन्हें धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्य के घमण्ड में भरा देखकर, देवर्षि नारद के शाप से वे वृक्ष योनि प्राप्त हो गये थे, उन दोनों को मुक्ति की सोची।

दयालु श्री नारद जी ने शाप के साथ कृपा भी किया। इन्हें उस योनि में भी मेरी कृपा से भगवान की स्मृति बनी रहेगी। देवताओं के सौ वर्ष बीतने पर इन्हें भगवान श्रीकृष्ण का सानिध्य प्राप्त होगा। उनके चरणों में प्रेम प्राप्त कर पुनः अपने लोक में चले आयेंगे।

इधर दोनों नलकूबर एवं मणिग्रीव दोनों एक साथ अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुये। नारद जी के बात को सत्य करने के लिये ऊखल बद्ध श्रीकृष्ण धीरे-धीरे उधर गये जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे। श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में घुस गये, ऊखल अटक गया, थोड़ा जोर लगाया कि विशाल वृक्ष जड़ सहित उखड़ गये। उन दोनों वृक्षों में से अग्नि के समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकले। उनके प्रकाश से दिशाएँ दमक उठीं। उन्होंने आकर श्रीकृष्ण चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ,
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं,
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म।।22।।

(अ. 10 स्क. 10 पूर्वार्ध)

कुबेर पुत्रों ने कहा—सच्चिदानन्द स्वरूप महायोगी परम योगेश्वर श्रीकृष्ण! आप प्रकृति से परे स्वयं पुरुषोत्तम हैं। आप ही समस्त प्राणियों के शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियों के स्वामी हैं। आप ही काल, सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं।

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्त मिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः।।29।।

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः।।30।।

(अ. 9 स्क. 10, पू.)

प्रभो! हमारी वाणी आपके मंगल चरित्र का गान करती रहे, कान रसमयी आपकी कथा सुनता रहे, हाथ आपकी सेवा में, मन आपके चरणारविन्द के स्मृति में रमा रहे। सम्पूर्ण जगत में आप ही आप है। संत आपके शरीर हैं। हमारा सिर सदैव झुका रहे और आँखें उनके दर्शन करती रहें।

बालकृष्ण ऊखल में बँधे हुये कुछ हँसते हुये बोले—नलकूबर और मणिग्रीव। तुम लोग मेरे परायण होकर घर जाओ। तुम लोगों को संसार चक्र से छुड़ाने वाले अनन्य भक्तिभाव की, प्राप्ति हो गयी है। दोनों ने परिक्रमा करके उत्तर दिशा की यात्रा की।

वृक्षों के गिरने की आवाज से भयभीत नन्दबाबा और अन्य गोप वृक्ष के पास गये। श्रीकृष्ण ऊखल बद्ध को, उन्होंने देखा और पाया कि इस दुर्घटना से न तो उनको और न किसी अन्य गोप बालकों को ही क्षति पहुँची है। परन्तु इस घटना का असर यह हुआ कि सब गोप मण्डल ने समवेत रूप से स्वीकार किया कि ब्रज में दिन प्रतिदिन उत्पात् बढ़ता जा रहा है। अतः सभी ने ज्ञानी उपनन्द जी के परामर्श से वृन्दावन को, अपने गृहस्थी के सामानों को छकड़ों में लादकर प्रस्थान किये। यहाँ आकर श्रीकृष्ण और बलराम जी अन्य गोप सखाओं के साथ प्राकृतिक बाल क्रीड़ा करते हुये सभी को आनन्द प्रदान करने लगे।

एक दिन की बात है, श्याम और बलराम अपने प्रेमी सखा ग्वाल बालों के साथ यमुनातट पर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय बछड़े का रूप धर कर एक दैत्य आया और अन्य बछड़ों में मिल गया। वह इस ताक में था कि अवसर मिलते ही श्याम और बलराम को मार दूँगा। इधर अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने बलराम जी को आँखों के इशारे से उस दैत्य बछड़े को दिखाया तथा स्वयं धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। भगवान श्रीकृष्ण ने पूँछ के साथ उसके दोनों पिछले पैर पकड़ कर आकाश में घुमाया और मर जाने पर कैथ के वृक्ष पर पटक दिया। उसका लम्बा-तगड़ा भयंकर दैत्य शरीर बहुत से वृक्षों को नष्ट करता हुआ धरती पर आ पड़ा। यह देखकर ग्वाल बालों के आश्चर्य की सीमा न रही। वे प्यारे कन्हैया की प्रशंसा एवं जयकार करने लगे, देवता भी फूलों की वर्षा करने लगे—

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति:,
देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः।।44।।

(अ. 11 स्क. 10 पू.)

कुछ दिनों पश्चात्, सब बाल गोपाल जब बछड़ों को चरा रहे थे, उन्हें एक बहुत बड़ा जीव जो सफेद पहाड़ सा दीखता था, दिखाई पड़ा। यह 'वक' नाम का असुर था। वह विशाल बगुले का रूप धर कर आया और झपटकर श्रीकृष्ण को निगल लिया। सभी ग्वाल बाल सखा यह देख मूर्छित हो गये। इधर योगेश्वर कृष्ण वकासुर के तलवे के निचले भाग में पहुँच आग के सदृश्य उसे जलाने लगे। अतः उसने श्रीकृष्ण को उगल दिया और अपने कठोर चोंच से उन पर वार करना चाहा। तब योगेश्वर कृष्ण ने अपने दोनों हाथों से उसका चोंच पकड़कर खेल–खेल में चीर डाला। यह देख देवता अति प्रसन्न हुये। चेतना आने पर सखा मण्डली ने श्रीकृष्ण को अक्षत पाकर तथा भयंकर राक्षस को मरा पाकर बड़ा आश्चर्य चकित हुये। उन्हें अपार आनन्द हुआ। उन्होंने घर लौटकर इस घटना का विवरण घर वालों को बताया।

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्,
गोपालसूनुं, पितंर जगदगुरोः।
चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक–
स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत।।50।।

(अ. 11 स्क. 10 पू.)

घर वालों ने सोचा–सच है, ब्रह्मवेत्ता महात्माओं के वचन कभी झूठे नहीं होते। देखो न, गर्गाचार्य ने जितनी बात कही थी वह सब सच सिद्ध हो रहा है–

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित्।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत्।।57।।

(अ. 11 स्क. 10 पूर्वार्ध)

।। श्री राम लाल प्रभवे नमः।।

श्रीमती सत्यभामा कैंसर फ्री

जगदीश राए बंसल "अधम" 9212434003

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुओं के महा गुरु और हमारे दादा गुरु प्रभू श्री राम लाल जी महाराज एवं अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ऋद्धि–सिद्धि के स्वामी अपने हर पीड़ित बच्चे की सहायतार्थ हर दिन, हर समय, हर जगह अपने सिद्ध योग की अमूल्य धरोहर दोनों हाथों से लुटाते रहे हैं। किसी को संकल्प मात्र से, किसी को दिव्य दृष्टि से, किसी को पुष्प प्रसाद से, किसी को रज प्रसाद से, किसी को स्पृष्य से और किसी को अन्तर्ध्यान रह कर, आज भी सन्तान, मकान, दुकान, प्राण–दान, कोर्ट कचहरी से विश्राम, और असाध्य रोगों से निदान इत्यादि अपने लाड़लों को मनचाहा आशीर्वाद दे कर निहाल कर रहे हैं। इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग हमारे आदरणीय गुरु भाई 42 वर्षीय श्री सुभाष तिवारी जी ने इस प्रकार बतलाया कि–

मैंने सन् 1989 में महा सिद्ध पीठ श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में सिद्ध शिरोमणि गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कुछ समय तक मेरी संवाई धाम की सेवा भाव से रीझ कर कृपा निधि जी ने मुझे सालवन आश्रम की सेवादारी में भेज दिया। सालवन की बातें भी बतलाऊँगा। फिर सन् 2004 में हम कुराना आश्रम आ गए। कुराना आराध्य देव जी की जन्मभूमि अलुपुर से मात्र चार कि.मी. की दूरी पर साथ लगता गांव है। कुराना में गांव के वैश्य परिवार के सेठों का शिव मन्दिर है। इसी गुरु भाइयों के मन्दिर परिसर में साथ बने एक कमरे में जगत नियन्ता महा प्रभू अखण्ड ज्योति श्री राम लाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय अनन्त गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के भव्य स्वरूप विराजमान हैं। जहाँ नित्य दोनों समय आरती पूजा होती है। एक दूसरे कमरे में गुप्त गुफा बनी हुई है। पहले गुरु जी कुराना में महीनों का कार्यक्रम रख लेते थे जिसमें गुरुजी के यौगिक प्रवचनों में सर्वात्मा मोर मुकुट पीताम्बर धारी बाँके बिहारी जी के बृज जैसी योग वर्षा होती थी। यहाँ के आदरणीय मा. हर प्रसाद शर्मा जी गुरु जी के प्रथम कृपा पात्र शिष्य थे। मा. जी को त्राटक सिद्ध था। यहाँ सन्ध्या की आरती बड़े जोर शोर से हुआ करती थी। गुरु जी अपने प्रवचनों में बताया करते थे कि कुराना में आरती के समय कितने ही साधक ध्यानस्थ हो जाया करते थे। इतना ही नहीं यहाँ पशु भी ध्यानस्थ हो जाया करते थे। एक सायं गांव का एक किसान गुरुदेव जी के पास आकर बोला कि आप यह **नमामि शम्भो** कहना

छोड़ दें, मेरे कोल्हू का बैल अपनी आँखें ऊपर चढ़ा कर स्तब्ध खड़ा हो जाता है.... और मेरा कार्य रुक जाता है। उन दिनों शायद सन् 1953 में यहाँ ब्र. श्री मोहन लाल बाबा रहा करते थे जो भोजन के नाम पर केवल फलाहार ही ग्रहण करते थे। और मौन रहकर साधना करते थे। बातें तो यहाँ की बहुत हैं परन्तु मैं अपने पर हुई गुरु कृपा ही बताने लगा था कि–

यह अहेतू की कृपा हमारे कुराना आने के एक वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् 2005 की है। मेरी प्रिय धर्मपत्नि श्रीमती सत्यभामा तिवारी के पैर में फोड़ा हो गया। स्थानीय उपचार से जब कोई राहत नहीं मिली तो हार कर श्रीमती जी को गोहाना के विख्यात डा. सी. डी. शर्मा के अस्पताल में ले गए। शर्मा जी एवं पूरी टीम ने चिकित्सा में कोई त्रुटि नहीं रखी मगर आराम के आसार नदारद रहे। क्या बताऊँ इस अवधि में गुरुदेव भगवान से मैं क्या–क्या अनुनय विनय करता रहा, क्या–क्या खट्टा–मीठा सोचता रहा..... अन्ततः वही हुआ जिसका डर था। डा. शर्मा ने कैंसर घोषित कर दिया। पैर से सैम्पल लेकर निरीक्षण हेतु दिल्ली भेज दिया। मेरे पैरों तले की जमीं खिसक गई। किंकर्तव्य विमूढ़ावस्था में पहुँच गया। इस प्रकार 17 दिन पश्चात् दवा लेकर हताश–निराश–लड़खड़ाते पैरों से कुराना लौट आए। क्योंकि सैम्पल की रिपोर्ट बारह दिन बाद आनी थी। सर्वप्रथम हमने गुरु दरबार में पेश होकर श्री चरणों में अपने रुके हुये आसुओं से आँखों को सूखा किया। ये बारह दिनों की अवधि गुरु आराधना में वर्षों जैसी व्यतीत हुई। क्या बताऊँ मेरा भाग्य भले ही छोटा हो परन्तु अभिलाषा बहुत बड़ी है।

हर धड़कन के पीछे कोई बात होती है,
हर दर्द के पीछे किसी की याद होती है।
आप मानें न मानें हमारी हर खुशी के पीछे,
गुरु से की गई हमारी फरियाद होती है।।

और अन्ततः **आ गई लहर शिवा के मन में**–मैं डरता–डरता निर्धारित समय पर रिपोर्ट लेने गोहाना पहुँचा। डा. सी. डी. शर्मा ने मुझे आश्चर्य से देखा फिर मुस्काए बोले, लक्की मैन सत्य भामा कैंसर फ्री। मैंने मन ही मन गुरु देव को प्रणाम किया कि भाग्य विधाता, संकट मोचक ने रहमत के बादल बरसा कर हमारे क्लिष्ट संस्कार को यूं सूक्ष्म रूप से काट दिया। न अल्ट्रा साउण्ड, न एम.आर.आई., न सी टी स्कैन, न आपरेशन न कोई अन्य उपचार। ऐसे सिद्धों के महा सिद्ध गुरु देव के श्री चरणों में कोटि–कोटि नमन। मैं अपने उस विकट समय को याद करके कहता हूँ कि–

चाँद पै काली घटा छाई तो होगी,
सितारों ने अपने मुस्कराहट छिटकी तो होगी।
मैं बार–बार चिल्लाऊँ गुरु भाइयों से कि,
नियन्ता ने कृपा की झड़ी लगाई तो होगी।।

अब सालवन की चर्चा करते हुये आपको याद दिला दूँ कि सालवन आश्रम का इतिहास

योगियों सिद्धों और तपस्वियों द्वारा सिद्ध सेवित कृपा क्षेत्र रहा है। मुझे वहाँ लगभग ग्यारह वर्ष तक रहने का गर्व प्राप्त है। इस अवधि में जो मैंने सुना, जो मैंने देखा, जो मैंने अनुभव किया और जो जैसा मुझे याद है, वह बतलाता हूँ। सालवन आश्रम में सर्वप्रथम ब्र. अंगार नाथ उर्फ महात्मा गौरीशंकर बाबाजी महाराज तपस्या किया करते थे। बाद में यह भी पता चल गया था कि बाबा जी ने नासिक में प्रभु जी से दीक्षा ले रखी थी। इनके देहावसान के पश्चात् उनके अन्ते-वासी दण्डी स्वामी श्री तेजानन्द जी महाराज ने यहाँ घोरतम तपस्या आरम्भ कर दी। अनुष्ठान पर अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान काल में मात्र बेल पत्र ही भोजन लेते थे। परिणामस्वरूप-

ध्यान धारणा सब समाधि हो गया।
रोम रोम अब ध्यानस्थ हो गया।।

स्वामी जी के रहते ही जब गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सालवन पधारे तो मंगल मूर्ति जी उस समय 40 वर्ष के योगीराज थे। तब तक गुरु जी दाढ़ी वगैरह नहीं रखते थे। उनका ओजस्वी मुखमण्डल, पहलवानों सा पुष्ट गठीला शरीर, चमकीले नेत्र और वाणी में दिव्यता थी। अतः शीघ्र ही भक्त-जनों की संख्या बढ़ती चली गई। इतनी मनोहर छवि और बाँके बन्सी की तान पर बृज बालाओं की दौड़ की तरह प्रचार प्रसार को देख कर आर्य समाजी भाइयों में खिन्नता बढ़ने लगी और एक दिन उनके सब्र का बाँध टूट गया। उन्होंने गुरुजी को शास्त्रार्थ की चुनौती दे डाली। एक माह पश्चात् का समय निर्धारित हो गया।

जागो लोगों जगत के, बीती काली रात।
हुआ उजाला योग का, मंगल हुआ प्रभात।।

आर्यों ने दूर-दूर से प्रचारक एकत्रित करके बहस शुरू कर दी। अपना पलड़ा कमजोर पड़ता देख कर खण्डन-मण्डन भी किया। मगर सर्व समर्थ्य जी के ओज के सामने टिक नहीं सके। परिणामतः परास्त हो कर जलते-भुनते-अकड़ते-बड़बड़ाते कूच कर गए।

जीतते हैं वही जिनमें जान होती है।
अकड़ तो मुर्दे की पहचान होती है।।

अगली प्रातः आर्य प्रचारक अपने-अपने गन्तव्य पर जाने की नीयत से, समय से पहले ही आकर बस में भर गए। उन दिनों एक ही बस पानीपत तक जाती थी। जब हमारे विद्वान बस में सवार होने लगे तो कन्डक्टर ने इन्कार कर दिया। बोला, बस में जगह नहीं है। इस अवसर पर अपने आदरणीय गुरु भाई श्री रघुनन्दन प्रसाद उर्फ टाट बाबा अड़ गए और बस से कुछ कदम आगे त्रिशूल गाड़ कर खड़े हो गए। बोले, हमारे गुरु भाईयों को बैठाए बिना बस नहीं हिलेगी। ड्राईवर ने लाख कारीगरी की मगर बस स्टार्ट नहीं हुई केवल घर-घर करती रही। अन्ततः अपने हथियार डाल ड्राईवर ने चार सीटें खाली करवाईं, आदर सहित गुरु भाईयों को बैठाया, और टाट बाबा से क्षमा याचना की तब जाकर बस अपनी गर्दिश पर

धूल उड़ा सकी। किसी ने सच कहा है कि–

वह तैरते–तैरते डूब गए, जिन्हें अभिमान था।

वह डूबते–डूबते तर गए, जिन्हें अरमान था।

आईए, आगे बढ़ते हैं कि दण्डी स्वामी तेजानन्द जी महाराज के पश्चात् सालवन का कार्यभार गुरुदेव जी ने महात्मा कृष्णानन्द जी को सौंप दिया। महात्मा जी की आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थी। जब वे ध्यान में बैठते थे तो कमरा सफेद–सफेद प्रकाश से भर जाता था। कमरे के बाहर भी खिड़की दरवाजों से निकलती हुई सफेद–सफेद प्रकाश की किरणें–खुली आँखों से देखी जा सकती थी। एक बार सर्व सिद्ध शक्ति दाता गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने महात्मा जी को आज्ञा दी कि तुम रात्रि के 12 बजे से प्रातः 4 बजे तक **ॐ नमः शिवाय** का अनविरत जाप किया करो। गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर महात्मा जी ने अक्षरशः पालन किया। मगर संकट तो यह आन पड़ा कि जब महात्मा जी मन्त्र जाप के पश्चात् अपनी चारपाई पर विश्राम करते तो कोई उनकी चारपाई उलट देता। अब महात्मा जी को चिन्ता डायन सताने लगी कि क्या करूँ–कैसे करूँ? इसी प्रकार एक बार जब आदरणीय गुरु भाई श्री पुष्कर दत्त शर्मा जी महात्मा जी से मिलने आए थे तब उनको एक शेर ने आश्रम में दहाड़ मार–मार कर मृत्यु तुल्य भयभीत कर दिया था। जिसका वर्णन गुरु ग्रन्थों एवं पत्रिकाओं में लिखा जा चुका है। अन्ततः महात्मा जी ने त्रिकाल दर्शी संकट मोचक गुरु देव के श्री चरणों में अनुनय विनय किया कि इस दुष्ट कृत कर्म से मुझे मुक्त करने की कृपा करें। गुरु देव भगवान ने इस विकट समस्या का ऐसा निदान किया कि पश्चात् किसी भी प्रकार से किसी को कोई हानि नहीं की गई। इस अदृश्य रहस्य से पर्दा उठाते हुए तिवारी जी ने बतलाया कि हमें बाद में पता चला था कि ब्र. अंगार नाथ उर्फ गौरी शंकर बाबा जी अपने देहावसान के पश्चात् भिन्न–भिन्न रूप बना कर आश्रम में आया करते थे। उनका कहना था कि इस सिद्ध सेवित तपो आश्रम में आकर केवल भजन करो। जो कोई सोया हुआ मिलता उसको वे तरह–तरह का कठोरतम दण्ड देते थे। इस बात का खुलासा होने पर महात्मा जी ने कहा कि–

हमें तो अपनों ने ही मारा, गैरों में कहाँ दम था।

मगर मेरी किस्ती तो वहाँ डूबी, जहाँ पानी कम था।

यहाँ की बातें तो हरी अनन्त हरी कथा अनन्ता वाली बात है लेकिन गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी को नमस्कार कर अपनी वाणी को विश्राम देता हूँ।

हे कर्म योगी हे जगत नियन्ता पतित पावन लखदातार।

मुक्त हस्त तिमिर मिटाए कोटि कोटि नमस्कार।।

जय गुरु देव।

कुसंग से बचिए सत्संग कीजिए

स्व. श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

सत्संग

वस्त्राण्यपस्तिलान् भूमि
गन्धो वासयते यथा।
पुष्पाणामधिवासेन तथा
संसर्गजा गुणा:।।
मोहजालस्य योनिर्हि
मूढैरेव समागम:।
अहन्यहनि धर्मस्य
योनि: साधुसमागम:।।
तस्मात् प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च,
सुस्वभावैस्तपस्विभि:।
सद्भिश्च सह संसर्ग:
कार्य: शमपरायणै:।।

(महाभारत)

जिस प्रकार फूलों के संसर्ग से उनकी गन्ध, वस्त्र, जल, तिल और भूमि को सुवासित कर देती है, वैसे ही संसर्ग से होने वाले गुण भी अपना असर करते हैं। विषयासक्त, मूढ़ पुरुषों का समागम मोह–जाल की उत्पत्ति का कारण है और प्रतिदिन साधु–महात्माओं का समागम करना धर्म की उत्पत्ति का हेतु है। अतएव ज्ञानी महात्माओं, अनुभवी वृद्धों, उत्तम स्वभाव वाले तपस्वियों और परम शान्ति को देने वाले सत्पुरुषों का ही संसर्ग रखना चाहिए।

कुसंग

मनुष्य के उत्थान और पतन के जितने कारण हैं, उनमें संग एक प्रधान कारण है। संग के अनुसार ही मनुष्य का मन बनता है और मन के अनुसार ही मनुष्य से क्रिया होती है एवं क्रिया के अनुसार ही उसका फल मिलता है। अच्छे हृदय का मनुष्य भी नीच संग से नीच मन वाला होकर गिर जाता है और असदाचारी मनुष्य भी उत्तम संग पाकर असदाचार से छूटकर महात्मा बन जाता है परन्तु इतना याद रखना चाहिए कि बुरे संग का प्रभाव साधारण मनुष्य पर जितना शीघ्र और विशेष रूप से पड़ता है उतना शीघ्र और उतनी मात्रा में उत्तम संग का प्रभाव नहीं पड़ता है। कारण यह है कि प्रकृति स्वभावत: अधोगामिनी है, अतएव जैसे जल स्वभाव से ही नीचे की ओर बहता है, इसी प्रकार प्रकृति के गुणों में स्थित पुरुष भी स्वभावत:

पतन की ओर ही जाता है। उसमें यदि कुसंग की सहायता मिल जाती है तो जैसे ऊपर से गिरता हुआ मनुष्य धक्का लग जाने पर और भी बहुत शीघ्र गहरे गड्ढे में गिर जाता है, वैसे ही कुसंग के धक्के से मनुष्य का पतन बहुत ही शीघ्र तथा गहरा हो जाता है। विषयों की आसक्ति जन्म–जन्मान्तर के दूषित संस्कार, वातावरण का प्रभाव आदि ऐसे कितने ही कारण हैं जो उत्थान के मार्ग में सदा ही बाधक बने रहते हैं। इसलिए अच्छे संग का असर साधारण मनुष्य पर देर से और कम मात्रा में होता है। पतन तो निर्बलता में, अंधेरे में या अनायास ही हो जाता है; परन्तु उत्थान में बल की, प्रकाश की ओर प्रयास की आवश्यकता होती है। पतन ध्वंस है, उत्थान निर्माण–यह सभी जानते हैं कि ध्वंस सहज है; परन्तु निर्माण बहुत कठिन है। ध्वंस में जरा–सी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए यह सिद्धान्त मानना पड़ता है कि साधारण मनुष्य पर कुसंग का असर बहुत शीघ्र होता है और सत्संग का देर में। अतएव कुसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

कुसंग से केवल बुरे आचरण और बुरे भाव वाले मनुष्यों का संग ही नहीं समझना चाहिए। इन्द्रियों का और मन का कोई भी विषय जो हमारे अन्तःकरण में दुष्ट भाव, दुष्ट विचार और विषयों के प्रति आसक्ति उत्पन्न करके भगवान् के पवित्र पथ में बाधा देने वाला या उससे गिराने वाला हो, उसी को कुसंग समझना चाहिए। 1. स्थान, 2. अन्न, 3. जल, 4. परिवार, 5. अड़ोस–पड़ोस, 6. दृश्य, 7. साहित्य, 8. आलोचना, 9. आजीविका के कार्य और 10. उपासना पद्धति, कम से कम ये दस चीजें ऐसी हैं जो अच्छे होने पर हमारे अन्तःकरण को अच्छा या ऊँचा बना सकती हैं और बुरी होने पर हमें बुरा बनाकर गिरा भी सकती हैं। इसलिए जिस वस्तु से जरा भी पतन की सम्भावना हो ऐसी किसी भी चेतन या जड़ वस्तु को जहाँ तक हो सके नहीं देखें, ऐसी कोई बात न सुनें ऐसी कोई चर्चा न करें, ऐसे किसी वातावरण में न रहें, ऐसा कोई अन्न न खायें; ऐसा साहित्य न पढ़ें, ऐसी कोई आजीविका का कार्य न करें और न ऐसी कोई उपासना ही करें। कुसंग का ज्यों–ज्यों प्रभाव होता है, त्यों–ही–त्यों मनुष्य की बुद्धि वैसी ही बनने लगती है। यहाँ तक कि सात्विक पुरुषों की बुद्धि भी कुसंग के प्रभाव से राजसभावापन्न होकर अच्छे–बुरे का यथार्थ निर्णय करने में असमर्थ हो जाती है और उसी राजस बुद्धि पर जब कुसंग का विशेष प्रभाव पड़ जाता है, तब तो वह विपरीत ही निर्णय करती है। इस अवस्था में मनुष्य पहले जिस बात को बुरी समझता था, उसी को अच्छी समझने लगता है। फलतः उसको अपने पतन का पता नहीं लगता, बल्कि वह पतन को ही उत्थान समझने लगता है और प्रयत्नपूर्वक बड़ी तेजी से पतन की ओर अग्रसर हो जाता है।

यद्यपि वातावरण और अन्न–जलादि के संग का प्रभाव कम नहीं पड़ता तथापि इन सबसे अधिक प्रभाव मनुष्य के संग का पड़ता है। इसीलिए साधारणतया महात्मा पुरुषों के संग को सत्संग और बुरे मनुष्यों के संग को कुसंग कहा जाता है।

अन्तर्ज्ञान अथवा दिव्य दृष्टि

श्री लालजीराम शुक्ल

भारतीय महर्षियों का विचार

आधुनिक मनोविज्ञान ने बुद्धि और सहज ज्ञान के सम्बन्ध पर नया प्रकाश डाला है। सहज ज्ञान बुद्धि से कोई पृथक् वस्तु है, इस प्रकार का विचार पूर्व और पश्चिम दोनों का ही तत्त्व विचार–धाराओं में बहुत पुराने समय से चला आया है। जो बात हम बुद्धि से नहीं जान सकते उसे सहज ज्ञान अथवा अन्तर्ज्ञान से जान सकते हैं। अंग्रेजी में बुद्धि को इन्टेलीजेन्स और सहज व अन्तर्ज्ञान को इन्ट्यूशन कहा गया है, अन्तर्ज्ञान को दिव्य दृष्टि भी कहा गया है। जब मनुष्य की बुद्धि किसी विषय में सोचते–सोचते थक जाती है और किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँचती तो वह सहज ज्ञान व दिव्य–दृष्टि की शरण लेता है। इससे जो प्रकाश मिलता है यह किसी प्रकार के सन्देह को घुसने नहीं देता। अन्तर्ज्ञान में तर्क–वितर्क के लिए स्थान नहीं होता। उसके लिए बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती, वह अपना प्रमाण अपने आप लेकर आता है। जब अर्जुन की बुद्धि कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर रही थी, उस समय श्रीकृष्ण जी की कृपा से उसे दिव्य–दृष्टि प्राप्त हुई और वह एक ही निश्चय कर सका। सब प्रकार का उपदेश देने के पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से यही कहा था कि सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर का निवास स्थान है, वही सबको कठपुतलियों के समान घुमाया करता है, उसी की शरण में जाने से तेरा त्याग होगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां,
हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि,
यन्त्रारूढानि मायया।।
तमेव शरणं गच्छ,
सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति,

स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

—गीता 18/61—62

अन्तर्ज्ञान का व्यवहार में कार्य

कोई–कोई लोग इस अन्तर्ज्ञान को ईश्वर की आवाज कहते हैं। कोई इसे आत्मा की आवाज कहते हैं। यह निश्चित है कि यह मनुष्य में एक ऐसी शक्ति है जो बुद्धि के परे है और जब बुद्धि विचार करते–करते थक जाती है तो इसी अन्तर्ज्ञान के अनुसार कार्य करने से मनुष्य का कल्याण होता है।

ईसाई मत

किन्हीं–किन्हीं तत्त्व चिन्तन करने वालों का कथन है कि इस प्रकार की शक्ति हमें सदा मार्ग बताती है। यह हमारे प्रत्येक निर्णयों में काम करती है, चाहे वे निर्णय व्यवहार जगत् के हों अथवा विचार जगत् के। ईसाई धर्म के सन्तों ने इसे बड़े महत्त्व का स्थान अपने धार्मिक विचारों में दिया है। विशहोप बटलर के अनुसार प्रत्येक निर्णय इसी दैवी शक्ति के अनुसार होता है। बुद्धि का सिर्फ इतना काम है कि वह किसी भी समस्या के अनेक पहलुओं को स्पष्ट करे। बुद्धि सिर्फ उतना ही काम कर सकती है, जितना कि किसी मुकदमे को तय करने में वकील लोग करते हैं। वह किसी भी बात के दोनों पक्षों को आत्मा के समक्ष ला देती है पर निर्णय का काम बुद्धि से नहीं होता, वह अन्तर्ज्ञान से ही होता है। किसी भी समस्या के सामने आने पर हमारा क्या कर्त्तव्य है और क्या नहीं, इस विषय में बुद्धि अनेक तर्क–वितर्क कर सकती है, उसमें निर्णय करने की शक्ति नहीं। इसी तरह तत्त्व के वास्तविक रूप को समझने की भी बुद्धि में शक्ति नहीं जो व्यक्ति बुद्धि से तत्त्व के वास्तविक रूप को समझना चाहता है वह स्वयं प्रयास में लगा हुआ है।

बुद्धिवाद की अल्पकालीन प्रबलता

गत तीन सौ वर्षों से बुद्धि की तत्त्व विचार में उपयोगिता और सामर्थ्य के सिद्धान्त का, अनेक विद्वानों ने प्रतिपादन किया। इन विद्वानों के अनुसार विचार से ही तत्त्व–दर्शन किया जा सकता है। विचार के सामर्थ्य में विश्वास न करना अन्ध–विश्वास की शरण लेना है। इस प्रकार की विचार–धारा आज भी बड़ी प्रबलता के साथ चल रही है। भौतिक विज्ञान का जो कि विचार से ही उत्पन्न हुआ है, सामर्थ्य देखकर सभी लोग विचार की महत्ता में विश्वास करने लगे। हम देखते हैं कि विचार के द्वारा मनुष्य ऐसी शक्ति को प्राप्त कर सका जो कि दूसरी तरह से उसे उपलब्ध नहीं थी। अतएव कितने ही लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विचार

से परे कोई तत्त्व ही नहीं। वास्तविक सत्य हमें विचार से ही प्राप्त हो सकता है। इस विचार का आधार हमारा संसार का अनुभव है। यह अनुभव हमें इन्द्रियों के ज्ञान के द्वारा पहले पहल प्राप्त होता है।

इमेनुअल कांट का, बुद्धिवाद का खंडन

इस विचार-प्रणाली का खोखलापन इमेनुअल कांट ने बताया। उसके अनुसार बुद्धि बाह्य पदार्थों के स्वरूप को जान सकती है। ये सभी पदार्थ नश्वर हैं, किन्तु बुद्धि तत्त्व तक नहीं पहुँच सकती, जो कि स्थायी है। बुद्धि देशकाल से परिमित पदार्थों पर विचार कर सकती है, तत्त्व वस्तु देश काल के परे है। अतएव उसका स्वरूप निरूपण करना बुद्धि की शक्ति के परे है। अतएव आत्मा व पदार्थों के सच्चे स्वरूप को जानना बुद्धि द्वारा संभव नहीं। आत्मा अथवा जड़ पदार्थों के परे कोई चैतन्य सत्ता है अथवा नहीं यह बुद्धि कदापि निश्चित नहीं कर सकती। यह मनुष्य मात्र के लिए विश्वास के आधार पर ही मानना होगा।

शोपन हावर का अन्तर्ज्ञान का सिद्धान्त

शोपन हावर पहला गम्भीर तत्त्वदर्शी है, जिसने यूरोप में यह बताया कि तत्त्व के जानने के लिए अपने आपको जानना चाहिए। विषय और विषयी के भेद बुद्धि जनित हैं, प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण संसार के बाह्य पदार्थ के ज्ञान के रूप हैं। प्रमाता प्रमेय का जहाँ तक भेद है अर्थात् जहाँ तक बुद्धि काम करती है, वहाँ तक प्रपंच है, तत्त्व वस्तु इस क्षेत्र के परे है। तत्त्व में प्रमाता और प्रमेय का भेद नहीं। अतएव यदि हम अपने आपको जान लें तो समस्त संसार के रहस्य को जान लेंगे। पर यह अपने आपको जानना विषय और विषयी के रूप में नहीं होगा। अपने आपको ज्ञान आत्मा से ऐक्य करने से ही होगा। इसका अर्थ यही है कि जब हमारा बाह्य पदार्थों में अर्थात् नाम रूप के मिथ्या संसार में भटकता हुआ मन रुकेगा तो आत्मा का ज्ञान अपने आप हो जावेगा। तत्त्व-दर्शन के लिए विषयों के ज्ञान के बढ़ाने की आवश्यकता नहीं, इस ज्ञान से मन को निवृत्त करने की आवश्यकता है। जितना ही हमारा मन विषयों से अलग होता है, उतना ही यह तत्त्व की ओर जाता है, तत्त्व का ज्ञान इस तरह अपने आप ही होता है, यह बाहरी ज्ञान के बढ़ाने से नहीं होता। बौद्धिक ज्ञान विषय से बढ़ता है, तत्व ज्ञान नहीं बढ़ता। इस प्रकार के ज्ञान को ही अन्तर्दर्शन कहा जाता है। अन्तर्दर्शन की अवस्था में प्रमाता और प्रमेय एक हो जाते हैं। जहाँ बुद्धि द्वारा नाम रूपात्मक जगत् का ही ज्ञान होता है वहाँ अन्तर्दर्शन से तत्त्व-बोध होता है जो तत्त्व अन्तर्ज्ञान से जाना जाता है, वह प्रकारता रहित है, उसका किसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। जो वस्तु वर्णित हो सकती है वह नश्वर

होती है; विषय-ज्ञान इसी प्रकार का होता है। अतएव इस अन्तर्ज्ञान का स्वरूप दूसरे व्यक्ति को समझाना सम्भव ही नहीं।

वर्गसन का विचार

वर्तमान काल में अन्तर्ज्ञान के सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रसिद्ध तत्त्व-वेत्ता वर्गसन ने किया है। उसने अपने सिद्धान्त को विद्वानों के समक्ष रखने में बड़ी प्रतिभा दिखाई है। उसका कथन है कि बुद्धि हमें किसी भी वस्तु के बाह्य स्वरूप को ही दिखला सकती है, उसकी आत्मा का दर्शन नहीं करा सकती। बाहर से दृश्य पदार्थ जैसा दिखाई देता है वह वास्तव में वैसा नहीं है। वास्तव में प्रत्येक पदार्थ चंचल और सजीव है पर बुद्धि उसे स्थिर और निर्जीव दर्शाती है। संसार में जड़ कोई पदार्थ नहीं। सभी पदार्थ चैतन्य हैं (चैतन्य के अर्थ क्रियमाण माने गये हैं) जड़ता बुद्धि का कार्य है। बुद्धि प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप को उतना ही जानती है जितना कि व्यवहार जगत् के लिए आवश्यक है। भौतिक विज्ञान भी हमें संसारी कामों में सफल बनाने का साधन है। अतएव विज्ञान की दृष्टि तत्त्व दृष्टि से भिन्न है। विज्ञान संसार के सभी पदार्थों को जड़ रूप देखता है। यहाँ तक कि जीव तत्त्व को भी जड़ पदार्थ की दृष्टि से ही देखता है। यदि ऐसा न किया जाये तो विज्ञान कोई नियम ही स्थिर न करने पावे। विज्ञान संसार की प्रत्येक घटना अर्थात् संसार की सभी वस्तुओं के व्यवहार के विषय में अकाट्य नियम स्थिर करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार के नियम तभी स्थिर किये जा सकते हैं जब कि विज्ञान प्रत्येक पदार्थ को किसी दृष्टि से एकसा ही देखे। उनके व्यवहार में यदि स्वतन्त्रता की कल्पना विज्ञान करता है तो किसी प्रकार के नियम स्थिर न हो सकेंगे। अतएव जहाँ इस प्रकार की स्वतन्त्रता देखी जाती है, उसे विज्ञान समझने और समझाने की कोई चेष्टा नहीं करता।

विज्ञान बुद्धिवाद की संतान है। इसका क्षेत्र जड़ पदार्थ है। बुद्धि जड़ पदार्थ के विषय में ही जान सकती है अर्थात् वह वस्तु के स्वरूप को न जानकर उसकी ऊपर की बातों को जानती है। पर जिस तरह घर के बाहरी बातों के वर्णन से घर की वास्तविकता नहीं जानी जा सकती, इसी तरह बौद्धिक ज्ञान से तत्त्व का दर्शन नहीं होता। तत्त्व दर्शन के लिए बुद्धि नहीं अन्तर्ज्ञान की आवश्यकता है। अन्तर्ज्ञान विषय विषयी का भेद मिटा देता है, वह पदार्थों से अपने आपको एक करके जानने की चेष्टा है। अन्तर्ज्ञान की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में होती है। यह बुद्धि के समान पर उससे भिन्न एक विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति है। इसके द्वारा जो सत्य जाना जाता है वह दूसरी तरह नहीं जाना जा सकता।

वर्गसन महाशय की विचारधारा की बड़ी समालोचना हुई है। वर्गसन महाशय ने कहीं

कहीं इस अन्तर्ज्ञान की पशुओं के तर्क-वितर्क हीन ज्ञान से तुलना की है। अतएव कई लोगों ने यही कहा कि यदि अन्तर्ज्ञान कोई ऐसी शक्ति है जो बुद्धि से पृथक है और जो बिना युक्तियों के ही किसी निष्कर्ष तक पहुँच जाती है तो यह शक्ति मनुष्य की कोई दैविक शक्ति नहीं वरन् पशुओं जैसी ही शक्ति है। अन्तर्ज्ञान इस प्रकार बुद्धि ज्ञान से नीचा ठहराया जाता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि

आधुनिक मनोविज्ञान ने भी अन्तर्ज्ञान के ऊपर पर्याप्त विचार किया है। मनोविज्ञान के अधिक पंडितों के विचार के अनुसार अंतर्ज्ञान बुद्धिज्ञान का ही एक प्रकार है। अंतर्ज्ञान अस्पष्ट विचार ही है। विचार करते समय हम अपने समस्त अनुभवों को चेतना के समक्ष लाते हैं। और किसी विषय के प्रत्यक्ष पहलू पर दृष्टि डालते हैं। कोई निर्णय करने से पूर्व उसके हानि, लाभ, औचित्य और अनौचित्य के समर्थन में युक्तियाँ ढूंढते हैं। ये युक्तियाँ हमें स्पष्टतः ज्ञात रहती हैं। वह चेतन मन में आती हैं। अन्तर्ज्ञान के समय ऐसा नहीं होता। अन्तर्ज्ञान से जिस निर्णय पर हम आते हैं वह हमारे पुराने अनुभव पर अवश्य ही आधारित रहता है, किन्तु हम इसे स्पष्टतः नहीं जानते। जिस व्यक्ति का जैसा संसारी अनुभव रहता है उसका अन्तर्ज्ञान भी वैसा ही होता है। मैकडूनल और प्राइर महाशय इसी सिद्धान्त के समर्थक हैं। दोनों ही के अनुसार अन्तर्ज्ञान का स्थान विचार से नीचा है। सबसे ऊँचा ज्ञान-युक्ति सम्मत ज्ञान ही है। अन्तर्ज्ञान में भी युक्तियाँ रहती हैं, किन्तु वे व्यक्ति को स्पष्ट ज्ञात नहीं रहतीं। बहुत-सी युक्तियाँ उसके अर्ध चेतन मन में रहती हैं। अतएव पूर्ण विचार से निर्णय करना अन्तर्ज्ञान से निर्णय करने से ऊँचा है। जो निर्णय शिक्षित प्रौढ़ लोग विचार के द्वारा करते हैं, वही निर्णय अशिक्षित अथवा बालकगण अन्तर्ज्ञान से करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य विचार की वृद्धि है। किसी विषय में भी जिस व्यक्ति की अस्पष्ट धारणा व विचार हों, उसे स्पष्टतः जान लेना चाहिए। इसी प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती है। हम जब कभी अन्तर्ज्ञान के अनुभव का विश्लेषण करते हैं तो देखते हैं कि उसका आधार अतीत काल का अनुभव है। विचार का आधार भी यही अतीत काल का अनुभव है। अतः अन्तर्ज्ञान और विचार में कोई मौलिक भेद नहीं। एक अस्पष्ट ज्ञान है और दूसरा स्पष्ट ज्ञान है।

संकल्प-शक्ति

श्री जगदीशनारायण उपाध्याय

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में मन को जीतने व वासनाक्षय (वैराग्य तथा विचार) के निम्नलिखित चार उपाय बतलाये हैं–

सत्संगो वासनात्यामोऽध्यात्म–
शास्त्र विचारणम्।
प्राणस्पन्दनिरोधश्चे–
त्युपाना मनसो जय।।

सज्जन संग, तृष्णा त्याग, वेदान्त शास्त्र, विचार और प्राणायाम। इन चारों उपायों का सम्पादन करने पर थोड़े ही समय में मनोजय निष्पन्न हो जाता है। ज्ञानी पुरुष के मुख से शास्त्र का रहस्य ''जीव और जगत का तत्त्व क्या है? मैं क्या देहादि विशिष्ट, जन्म–मरणशील प्राणी हूँ। ईश्वर क्या मुझसे भिन्न है? यह जगत क्या सत्य है? मरण के उपरान्त भी क्या मैं रहूँगा? सुख–दुःख धर्माधर्म क्या है? आत्मा और परमात्मा का स्वरूप क्या है? भक्ति और ज्ञान किसे कहते हैं?'' सहज में ही ज्ञात हो जाता है। आगे चलकर यही आचरण और विचार–सहज स्थिति अन्तर्मुखता मन में शान्ति तथा आत्माकार में परिणित हो जाती है।

इन सबको यदि आप विचार करके देखें, तो मन का नैश्चल्य सम्पादन या संकल्प–शक्ति इसी मनोजय या वासनाक्षय का फल है। अतः इसीलिए महामुनि वशिष्ठ ने आगे मनोलय की व्याख्या करते हुए संकल्प–शक्ति का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है–

नाहं ब्रह्मेति संकल्पात्
सुदृढं बध्यते मनः।
सर्वं ब्रह्मेति संकल्पात्,
सुदृढं मुच्यते मनः।।
–मनोलय 23

हे राम! 'मैं संसारी हूँ' ऐसी भावना या निश्चय से मन बन्धन को प्राप्त होता है–'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे दृढ़ प्रत्यय से वह मुक्त हो जाता है। जैसा कि मैंने ऊपर की पंक्तियों में वर्णन किया है कि पूर्व जन्मों के संस्कारवान प्राणायाम, वृत्ति निरोध, आत्म–विचार और वासनात्याग से जब प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निद्रा और स्मृति इन पाँच वृत्तियों का जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति

अवस्था में साधक के मन के भीतर समावेश हो जाता है तो फिर वही वृत्तियाँ एक तत्व के रूप में क्षोभ के कारण प्रधान तत्त्व होकर ईश्वर को प्रणिधान कर देने से भक्ति विशेष के कारण चाह या अभिप्सा के रूप में बदल जाती है और सकल त्रिपुटियों का मैं ही प्रकाशक हूँ।' ऐसी भावना से चित्त प्रत्यगाकार में आकारित हो उठती है। फिर 'अखण्ड एकरस ब्रह्म ही मैं हूँ।' इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्म के साथ ऐक्यानुभव निर्विकल्प समाधि में सिद्ध होता है। संकल्प की दृढ़ता के कारण व्यष्टि भोक्ता, भोग्य और भोग समष्टि स्रष्टा, सृज्य और सृष्टि रूप त्रिपुटी के साथ तादात्म्य भाव को प्राप्त कर लेते हैं। अन्तःकरण विशिष्ट देहाभिमानी जीव अन्तःकरण–वृत्ति के निरोध (ईश्वर तत्त्व में समाधि) द्वारा अतिवाहक शरीर प्राप्त कर सत्य संकल्प हो जाता है। व्यष्टिभाव अतिवाहक शरीर में निहित रहता है। चंचल अन्तःकरण में बहुविषयाकार वृत्ति के स्फुरित होते रहते कोई अभिनव अर्थ सिद्ध नहीं हो पाता। मायोपाधिक ईश्वर से सकल फलों की उत्पत्ति होती है, अतः वह फल सम्बन्धी संकल्प (अन्य समस्त वृत्तियों के निरोधाभ्यास) से दृढ़ीकृत होने पर माया के स्वाभाविक स्पन्दन रूप में परिणत हो जाता है।

साधक ने छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार इसलिए संकल्प–शक्ति को मन से बढ़कर माना है। खासकर योगनिष्ठ साधकों के लिए यह समझने का विषय है।

19 वीं सदी में विज्ञान और धर्म में बड़ा तीक्ष्ण संघर्ष था। तब मन और चेतना विज्ञान की दृष्टि में निन्दा और द्वेष के पात्र थे, परन्तु अब वस्तु–स्थिति बदल चुकी है, अब ब्रह्माण्ड की सत्ता के अन्तिम तत्व के तौर पर प्रकृति को निश्चित रूप से अपर्याप्त माना जाता है। निःसन्देह वर्तमान भौतिक विज्ञान और जीव–विज्ञान आदर्शवादी दर्शन का तो कहना ही क्या है। सत्ता के मूल तौर पर विश्वव्यापी चेतना की ओर वैज्ञानिकों का स्पष्ट झुकाव है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के निम्नलिखित अभिमत हैं–प्रोफेसर एडिंगटन कहते हैं, 'हमारे अनुभव में मन सर्व प्रथम और प्रत्यक्षतम् वस्तु है। अन्य सब कुछ दूरवर्ती अनुमान हैं।' भौतिक विज्ञान की तथाकथित प्रकृति केवल मात्र एक संकेत संस्थान है। एक–दूसरे अति प्रामाणिक विद्वान प्लैंक ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है, 'मैं चेतना को आधारभूत मानता हूँ। प्रकृति को चेतना से निर्गत मानता हूँ। हम चेतना से परे नहीं जा सकते। प्रत्येक वस्तु जिसके बारे में हम बात करते हैं या जिसे हम सत् के तौर पर स्वीकार करते हैं, चेतना की अपेक्षा रखती है।' श्री जेम्स जीन्स के अनुसार, 'यह विश्व एक गणित–शास्त्रीय विचार के अनुसार मन का एक विचार है' और जो ये पदार्थ हमें विषयीभूत होते दृष्टिगोचर होते हैं, उसका कारण है, उनका 'किसी शाश्वत आत्मा के मन में रहना है'। सल्लिवान ने अपनी पुस्तक 'प्रख्यात वैज्ञानिकों के साथ भेंट' में आयन्स्टीन के सम्बन्ध में विवरण देते हुए कहा है–''ऐसा प्रतीत

होता है कि नये विश्व में हमारी धार्मिक अन्तदृष्टि को उतना ही प्रामाणिक स्थान प्राप्त है जितना कि वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि को। निःसन्देह उनमें से सबसे बड़े निर्माता की राय में हमारी धार्मिक अन्तर्दृष्टि वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का स्रोत और पथ-प्रदर्शक है।'' वर्तमान समय में प्रकृति एक संकेत और प्रतीतिमात्र बन गई है। चेतना और मन वास्तविक सत्तायें हैं। वास्तव में ज्ञान पाने की वैज्ञानिक प्रणाली को धार्मिक अन्तर्दृष्टि पर आश्रित समझा जाता है।

पातंजल योग-दर्शन, श्रीमद्भागवद्गीता एवं उपनिषद् 'ईश्वर' को अपरिहार्य समझती हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर 'सनातन गुरु' है। उसकी सत्ता एक ऐसी अतिमानस शक्ति है जिसे कर्म-फल और क्लेश स्पर्श भी नहीं कर सकते। वह सर्वत्र और अनुपम है, उसके प्रति आत्म-समर्पण से ही साधक समाधि का लाभ प्राप्त करता है। (पातंजल योग-दर्शन पाद 1, सूत्र 23 से 26) में इसकी व्याख्या निम्न शब्दों में की गई है।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा। क्लेशकर्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष-ईश्वरः। पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

अतः इसीलिए जीवन्मुक्ति आर्य तत्त्व-ज्ञान का शिखर है। यह भारतखण्ड के योगीजनों के ज्ञान की सर्वोच्च श्रेणी है। ऐहिक विषय-सम्पत्ति चाहे कितनी ही क्यों न मिल जाये, उससे अविनाशी सुख सम्भव नहीं है।' यह सिद्धान्त आर्य लोगों को जैसा सम्यक् रूप से ज्ञात था, वैसा अन्य किसी देश के लोगों को नहीं। विकारी और विनश्वर विषय सुख से विमुख होकर आत्म-सुख के लिए प्रबल प्रयत्न करना ही आर्य तत्त्व-ज्ञान का उद्देश्य है। आत्म-सुख कृत्रिम या जन्य पदार्थ नहीं है। अतः यह देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण के समाधान से उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि आत्मा नित्य सिद्ध और प्रमाण के फलस्वरूप आवरण के नष्ट होने पर हृदय में प्रकाशित होती है। इस रहस्य का पूर्ण परिज्ञान होने पर ही आत्म-विद्या का महत्त्व प्रत्यक्ष अनुभूत होता है। प्रतीक या प्रतिभा के बिना चिन्तन असम्भव है। अन्ध-विश्वास मनुष्य का महान शत्रु है, पर हठधर्मी उससे भी बढ़कर है। ईश्वर सर्व व्यापी है। मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना कि श्वांस के बिना जीवित रहना। स्मृति का उद्दीपन भाव परम्परा के अनुसार जड़-मूर्ति के दर्शन से मानसिक भाव विशेष का उद्दीपन हो जाता है अथवा मन में भाव विशेष का उद्दीपन होने से तदनुरूप प्रतीक या मूर्ति विशेष का आविर्भाव होता है। इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है वह आपको बतलायेगा कि वह बाह्य प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय में एकताग्नता से स्थिर रहने में सहायता देता है। जैसा कि आप जानते हैं कि मूर्ति न तो ईश्वर ही है और न सर्व व्यापी ही है। यहाँ एक हिन्दू की सारी धर्म भावना प्रत्यक्ष अनुभूति या

साक्षात्कार में केन्द्रीभूत हुआ करती है। जो ईश्वर का साक्षात्कार करके स्वयं ईश्वर बनना है।

ऊपर दिये गये विषय के अनुसार इसी कारण उपनिषदों में ''यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।'' (श्वेताश्वरोगपनिषद 23 अध्याय 6) के मत से ईश्वर तथा गुरु दोनों की भक्ति का उपदेश दिया गया है। इसके अलावा महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्म का अधिकारी निरूपण करते हुए गुरु–सेवा करने का उपदेश निम्न शब्दों में किया है–

पावन्नानुग्रह साक्षा–

ज्जायते परमेश्वरात्।

तावन्न सद्गुरु कश्चित्स–

च्छास्त्रं वाऽपिनालयेत्।।

भावार्थ–परमेश्वर का साक्षात् अनुग्रह प्राप्त हुए बिना कोई भी सद्गुरु को प्राप्त नहीं कर सकता या सच्छास्त्र के अभ्यास में रत नहीं हो सकता अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह होने पर ही अधिकारी पुरुष गुरु–सेवा और शास्त्राभ्यास में यत्नशील हो सकते हैं और उसके फलस्वरूप ब्रह्म–ज्ञान प्राप्त करते हैं। धन–सम्पत्ति या सुख–भोग के लिए अभीष्ट साधन–प्राप्ति ईश्वर–कृपा की वास्तविक परिचायक नहीं है। केवल सद्गुरु की प्राप्ति ही ईश्वर का साक्षात् अनुग्रह समझना चाहिए। श्रीगुरु का दर्शन, उनकी पूर्ण भक्ति, उनकी प्रसन्नता प्राप्ति और परिणामस्वरूप अन्तःकरण की व्याकुलता का नाश, ये सभी शास्त्र में ईश्वर के सार्वक अनुग्रह बतलाये गये हैं।

साधक यदि विचार करके देखें तो बिना संकल्प–शक्ति के इनसे किसी में भी सफल होना असम्भव है। किन्तु केवल दृढ़ संकल्प–शक्तिमात्र से ये सब तथा इनसे कहीं अधिक बढ़कर सफलता प्राप्त हो सकती है। संकल्प–शक्ति ही मनुष्य के जीवन में उन्नति और अवनति का कारण होती है। उपनिषदों में बतलाया गया है–''संकल्पमयोऽयं पुरुषः।'' अर्थात् मनुष्य संकल्प से ही बना हुआ है। हिन्दू धर्म की आचार संहिता को रचने वाले महाराज मनु का कथन है–

संकल्पमूलः कामो,

वैयज्ञ संकल्पसंभवः।

व्रत नियम धर्माश्च,

सर्वे संकल्पजा स्मृता।।

सब प्रकार की कल्पनाओं का मूल यह संकल्प है। यज्ञ संकल्प से उत्पन्न होता है। व्रत

(प्रतिज्ञा) नियम, धर्म–सब इसी संकल्प से उत्पन्न होने वाले माने गये है।

आज हमें जितने महापुरुष दीख पड़ते हैं, जिनके नाम पर संसार फूल चढ़ाता है और जिन्हें अत्यन्त आदर से स्मरण करता है, उनके जीवन को पवित्र और उच्च बनाने का कारण संकल्प शक्ति ही है। आर्यों की ईश्वरीय और जगत की प्राचीनतम पुस्तक 'वेद' में अनेकों सूत्र इसी विषय में आते हैं, जिनमें बारम्बार यही प्रार्थना की गयी है–'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' अर्थात्–मेरा यह मन पवित्र संकल्प वाला हो। यथा–वेद में अनेक सूत्र इस विषय में आते हैं–

''ॐ यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन

प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।

यस्मिश्चित्तः सर्वमोतं प्रजानां,

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।''

(वेद–5)

भावार्थ–जिस अमृत मन के द्वारा यह भूत, भविष्यत तथा वर्तमान जाना जाता है, जिससे सात होताओं वाला यज्ञ फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं

तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है और उसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर चला जाता है, वह दूर जाने वाला ज्योतियों का ज्योति इन्द्रियों का प्रकाश मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ॐ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो

यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यद पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे

मनः शिव संकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

कर्मशील, मनीषी, धीर पुरुष जिसके द्वारा परोपकार क्षेत्र में तथा जीवन–संघर्ष में बड़े–बड़े कार्य कर दिखाते हैं, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अपूर्व सत्ता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋतु किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

जो नये-नये अनुभव कराता है, पिछले जाने हुए अनुभव कराता है, संकट में धैर्य धारण करता है, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

ॐ येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-
त्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

जिस अमृत मन के द्वारा यह भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान जाना जाता है, जिससे सात होताओं वाला यज्ञ फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ॐ यास्मिन्नृचः साम यजुँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभानिवाराः यस्मि-श्चित्तँसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

भावार्थ—जिसमें ऋचाएँ, साम, यज, इस प्रकार टिके हुए हैं जैसे रथ को नाभि में अरे, जिसमें इन्द्रियों की सारी प्रवृत्ति पिरोयी रहती है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ॐ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने-
नीयतेऽभिशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(यजुर्वेद)

भावार्थ—अच्छा सारथी जिस प्रकार वेगवान घोड़ों को वागों से पकड़कर चलाये जाता है, उसी प्रकार जो मनुष्यों को लगातार चलाता रहता है, जो ह्रदय में रहने वाला है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

प्रारब्ध कर्म संकल्पों द्वारा ही क्रियामात्र होते हैं, जैसा कि कहा गया है—''विनाश काले विपरीत बुद्धिः'' इसलिए मनुष्य यदि अपने संकल्प को विशुद्ध रखे और जब वह मलिन और

अपवित्र होने लगे तो यह जान कर कि मुझ पर कोई भारी विपत्ति आने वाली है, शीघ्र ही अपने संकल्प और विचारों को शुद्ध और पवित्र बना ले तो कभी भी दुर्भाग्य उसको भयभीत नहीं कर सकता। शुद्ध विचार वाले मनुष्य पर यदि अकस्मात् कोई विपत्ति आ भी जाये तो उसका बोझ तुरन्त ही दूसरे लोग बाँट लेते हैं। अर्थात् अपनी सहायता और सहानुभूति से उसकी विपत्ति को तत्काल ही दूर कर देने का यत्न करते हैं, परन्तु इसके विरुद्ध दुर्जन को तत्काल दु:ख में डालने के लिये सबके सब तैयार हो जाते हैं। सुतरां जो मनुष्य दु:खों को अपने जीवन में कम करने की इच्छा करता है, उसको चाहिए कि वह संकल्प-विद्या-प्रवीण बने और उसका सुप्रयोग करना सीखे। जैसे उगते हुए पौधों को उखाड़ कर फेंकना अति सुगम है, परन्तु जब वृक्ष बन जाये, तब फिर उसको जड़ से उखाड़ना मनुष्य की शक्ति के बाहर हो जाता है। ठीक ऐसे ही उत्पन्न होते दुष्ट संकल्पों का उच्छेदन और उनके स्थान में पवित्र तथा शुद्ध संकल्पों का संयोजन करना अतीव सुगम होता है, परन्तु वही जब एक वृक्षाकार रूप धारण कर लेता है, तब फिर उसको नष्ट करना कठिन हो जाता है। सुतरां जो उठते हुए दुष्ट संकल्प को उसी समय मिटा देते हैं, वे उसके परिणामस्वरूप कर्म और कर्म के फल दु:ख से भी बचे रहते हैं। इसी कारण 'वेद' में बारंबार यह प्रार्थना आई है कि यह मेरा मन पवित्र संकल्पों का स्रोत बने। संकल्प विद्या की शक्ति का पूरा-पूरा अनुभव करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि संसार के प्रत्येक पदार्थ में यह विद्या विराजमान है। आज तक जितनी मानसिक शक्ति जैसे मैस्मेरिज्म, हेप्नोटिज्म, टेलीपैथी, स्प्रिचुआलिज्म आदि मनुष्यों को विदित हुई हैं। उपर्युक्त जितने प्रयोगों का सम्मोहन-शक्ति द्वारा होना बतलाया गया है, उन सब में मुख्य भाग संकल्प-शक्ति का ही है। उन सबमें यही अलौकिक-शक्ति काम करती है।

मार्कोनी के बिना तार के तार वाले यन्त्र ने संकल्प-शक्ति को अत्युत्तमता से सिद्ध किया है। उससे इसके प्रबल अस्तित्व का प्रत्येक बुद्धिमान को निश्चय हो जाता है। मार्कोनी महाशय कहते हैं-

"एक शब्द अथवा वैसा ही कोई स्वर-वायु मण्डल में उसी प्रकार की गति उत्पन्न करता है, जिस प्रकार झील में एक कंकरी के डाल देने से तरंगें उठने लगती हैं। शब्द को ये तरंगें दूर-दूर तक पहुँचाती हैं, चाहे कितना दूर का अन्तर क्यों न हो, वे टेलीग्राफ के प्रत्येक यन्त्र को अपना अस्तित्व अनुभव कराती है। आकाश के सूक्ष्म मण्डलों (ईथर) पर संकल्प की तरंगें दौड़ती, काम करती और दूर तक पहुँचती रहती हैं। यदि मार्कोनी साहब अपने इस अलौकिक यन्त्र का आविष्कार न करते तो युक्ति तथा तर्क पर ही भरोसा रखने वाले बहुत से मनुष्यों को विश्वास ही न होता। ईथर की शक्ति जो आकाश में विद्यमान है, जिस पर संकल्प की

तरंगें दूर तक दौड़ती हैं, हमारे मस्तिष्क में भी विद्यमान है। निरन्तर विचार से उसके अन्दर गति उत्पन्न होती है और मस्तिष्क से उसी प्रकार मिलती है, जिस प्रकार विद्युत की धारायें निकला करती हैं। विचार की वे धारायें जो अनिश्चित और संकल्प–शक्ति की संरक्षा के बिना बाहर को निकलती हैं, शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं। किन्तु विचार–शक्ति की वे तरंगें जिनके साथ संकल्प–शक्ति का प्रबल बल विद्यमान होता है, मनुष्य के मस्तिष्क से निकलकर रुकावट और विरोध होते हुए भी उस समय तक निरन्तर दौड़ती रहती हैं, जब तक कि उनको ऐसा कोई मन न मिल जाये जो उस विचार के साथ सहानुभूति और अनुकूलता रखता हो।

यदि आप घृणा, धिक्कार, फटकार या शत्रुता के विचार इसी संकल्प–शक्ति की सहायता से किसी के लिए भेजेंगे तो वे विचार जीवित शक्ति बन जायेंगे और वे तब तक निरन्तर दौड़ते रहेंगे, जब तक कि उसके मन तक न पहुँच जायें, जिसके लिए वे भेजे गये थे। ये उसके अतिरिक्त और बहुत से मनों के अन्दर भी अपना प्रतिबिम्ब छोड़ जाते हैं। प्रेम का जो प्रत्येक विचार बाहर आता है, अपने परिणाम में प्रेम की पूरी शक्ति लेकर उसी के पास वापस आ जाता है, इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि—'मन का मन साथी है' और फारसी में कहा है कि—दिल रा बदिल राहे अस्त।' क्योंकि आसमान में अनेक भाँति के विचार चक्कर लगाते रहते हैं, इस विचित्र प्रकार के विचार की मनुष्य में ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है, वह उसी प्रकार के विचारों को आकाश से अपनी ओर खींच लेता है। यही कारण है, यदि कोई बुरा विचार मन में उत्पन्न हो जाये तो फिर उसी प्रकार के विचारों की लड़ी मन में बन जाती है यह तब तक बन्द नहीं होती जब तक कि मनुष्य स्वयं अपनी प्रबल संकल्प–शक्ति से अपने मन को उस ओर से नहीं रोक लेता।

आकाश में उत्तम से उत्तम निकृष्ट से निकृष्ट विचार विद्यमान हैं, इसीलिए केवल उन विचारों को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को एकाग्र चित्त से उद्यत होना और उस ओर चित्तवृत्ति का लगाना ही पर्याप्त है। जब तत्त्वदर्शी किसी पदार्थ पर विचार करता है, तब उसी सम्बन्ध में नवीन बातें उसके मन में उठने लग जाती हैं और ये ऐसी बातें होती हैं जो स्वयं सोचने वालों के लिए सर्वदा नई और विस्मित कर देने वाली होती हैं। इसी प्रकार आविष्कार करने वाला जब अपने आविष्कार के सम्बन्ध में विचार करने के लिए अपने चित्त को एकाग्र करके एकान्त में बैठ जाता है, तब वह आकाश में से अपने उपर्युक्त विचारों को उसी प्रकार संग्रह कर लेता है जिस प्रकार एक ताड़ का वृक्ष भूमि से मधुर रस को अपने अन्दर खींच लेता है। ठीक इसी प्रकार से एक आविष्कार करने वाला अपने मन को अन्य विचारों से शून्य

और एकाग्र करके अपने उपयोगी विचारों को अपने अन्दर आने का अवसर देता है एवं निरन्तर अभ्यास के अन्त में एक विख्यात आविष्कारक बन जाता है।

अध्यात्म–विद्या के गुरु जब अपने किसी शिष्य से कोई काम करवाना चाहते हैं, तब उसको पत्र आदि नहीं लिखा करते प्रत्युत अपने विचारों को ही उसके मन में रख देते हैं। ये विचार उसके अन्दर पहुँचकर उसको वही काम करने के लिए प्रेरणा करते हैं, जिसका करना उसके गुरु को अभिप्रेत होता है। यही मानसिक प्रेरणा है, यही गुप्त आध्यात्मिक सम्बन्ध और आत्मिक शक्ति है, जो पिछले महात्मा अपने शिष्यों को दिया करते थे। यदि किसी के प्रति बुरे विचारों की भावना करोगे तो वे वहाँ दुःख और व्याकुलता देने के पश्चात् अपने सजातीय अन्य विचारों को तुम्हारे लिए उत्पन्न करेंगे अर्थात् जितने भी घृणा के विचार तुम दूसरों के निमित्त उत्पन्न करोगे, उनसे कहीं अधिक मात्रा में लौटकर तुमको मिलेंगे और यदि प्रेम के विचार भेजोगे तो वे भी प्रभावशाली रहेंगे, और वे उस मन तक अवश्य पहुँचेंगे, और अपने परिणाम में अधिक प्रेम को तुम्हारे निमित्त उत्पन्न करेंगे। यही कारण है कि जब तुम्हारा मन किसी से घृणा करता है तो वह भी उसी प्रकार तुमसे घृणा करता है। हाँ, यदि तुम उसकी घृणा को दूर करना चाहते हो तो उसके लिए अपने से प्रेम भरे विचारों को भेजो। ये विचार उसके मन का सुधार करेंगे और फिर अपने परिणाम में तुम्हारे लिये प्रेम को उत्पन्न करेंगे। इसी कारण हमारे प्राचीन शास्त्रों ने उपदेश किया है कि प्रत्येक मनुष्य को जीव मात्र की भलाई के लिए प्रबल शक्ति के साथ यह प्रार्थना करनी चाहिए–

सर्वेभवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्व भद्राणिपश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्।।

सम्पूर्ण जीवों को सुख प्राप्त हो, सब प्राणी निरोग हों, सबका कल्याण हो, किसी को भी दुःख न हो।

जब मनुष्य अपने अन्दर से समस्त शत्रुता के विचार निकालकर संसार के लिये भलाई और सुख की प्रार्थना करता है, तब उसके मन में विश्वमात्र का प्रेम जाग्रत होता है, तब संसार का कोई पदार्थ उसके लिये भासोत्पादक नहीं रहता।

ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं
द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत–
रादधरादभयं नो अस्तु।।

भावार्थ–अन्तरिक्ष में हमारे लिये अभय हो, इन दोनों द्यौ और पृथ्वी में अभय हो, अभय पीछे हो, आगे हो, ऊपर–नीचे हमारे लिये सर्वत्र अभय हो।

ॐ अभयं मित्रादभयम्–
मित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रम् भवन्तु।।
(यजुर्वेद)

भावार्थ–हम मित्रों से अभय हों, शत्रुओं से अभय हों, जाने हुए परिचितों से अभय हों, और आगे आने वाले हैं, अपरिचित हैं उनसे भी अभय हों। रात्रि और दिन में हम निर्भय रहें, समस्त दिशाएँ हमारे लिए मित्र रूप हों। (अथर्व०19/15/5/6)

स्वामी विवेकानन्द जी महाराज इसी शक्ति का वर्णन करते हुए अपने राजयोग में इस प्रकार लिखते हैं–

योगी को चाहिए कि वह रात्रि को सोते समय और प्रातःकाल जागने पर चारों दिशाओं में हुँह करके प्रबल संकल्प शक्ति से सारे संसार की भलाई और शान्ति के अर्थ अपने विचारों को छोड़े। यथा–

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ, शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्ति शान्तिरेवः शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।
(अथर्व०19)

भावार्थ–द्यु लोक शान्ति दे, अन्तरिक्ष शान्ति दे, पृथ्वी लोक शान्ति दे, जल प्राण–शान्ति दे, रोग नाशक औषधियाँ शान्ति दे, भोज्य वनस्पतियाँ शान्ति दे, सबके सब देव शान्तिदायक हों, ज्ञान शान्ति दे, सब कुछ शान्ति ही दे, शान्ति भी सचमुच शान्ति हो, शाश्वत ऐसी शान्ति मुझे प्राप्त हो।

घृणा का प्रत्येक विचार जो मनुष्य के अन्दर से बाहर आता है, वह वापस अपने पूरे बल के साथ उसी के पास आ जाता है, और ऐसा होने में उसे कोई वस्तु रोक नहीं सकती। इसी प्रकार कोई मनुष्य अनुमान नहीं कर सकता कि अज्ञानता से विचारे हुये घृणा, प्रतिकार और कामी तथा अन्य घातक विचारों के भेजने से कितने जीवन नष्ट होंगे और कितनों की हानि होगी। इसलिए विचारशक्ति के महत्व को समझो और उसको सर्वदा पवित्र तथा निर्मल रखने का प्रयत्न करो और प्रतिदिन समस्त जीव–मात्र के कल्याण के लिये प्रार्थना किया करो, इसी से तुम्हारा और सबका भला होगा।

विचारों द्वारा मनुष्य के शरीर में स्वस्थता और रोग दोनों ही का संचार किया जा सकता है। विचार भूख को उत्पन्न और नाश कर सकता है। वह मुख-मण्डल को सहसा पीला कर देता है। मुँह और होठों को सुखा देता है। यही विचार मुख-मण्डल को प्रफुल्लित, रक्त की गति को तीव्र और शरीर पर क्रान्ति प्रदान करता है। यही देह कँपाते हुए, नेत्रों से आँसुओं का प्रवाह जारी कर देता है, मन की गति इसी के द्वारा शिथिल और क्षीण हो जाती है। यही मनुष्य को आनन्दमय बना देता है और यही मनुष्य को निराशा की विकराल खोह में ढकेल देता है। इसी के अकस्मात् प्राप्त आनन्द को न पचाकर मनुष्य फूलकर मर जाता है और कभी भय के कारण लहू सूख जाने अथवा मन की गति रुक जाने तथा भय, शोक और असह्य दुःख के कारण तुरन्त और अकस्मात् मृत्यु हो जाती है, जहाँ यह मनुष्य को मृत्यु के मुख में तुरन्त ढकेल सकता है, वहाँ वही उसे स्वास्थ्य, आनन्द और सुख भी प्रदान कर सकता है।

वस्तुतः हमारी दुनिया वह नहीं है जिसको हम मानते है, प्रत्युत वह है जिसका हम विचार करते हैं। मनुष्य विचारों का एक पुतला है। जैसे उसके विचार होते है, वैसा ही वह बन जाता है। इसलिए यदि हम रोग के विचार को एक समय तक निरन्तर बनाये रखेंगे तो निराश होना पड़ेगा, रोग अपना स्वरूप अवश्य दिखलायेगा, अर्थात् जैसा विचार करेंगे वैसा ही हो जावेगा।

अतः प्रतिदिन प्रति क्षण मनुष्य को चाहिए कि वह निराश न हो, वह सदैव आशाजनक प्रसन्नता, स्वास्थ्य और सफलता के विचारों को मन में धारण करे, सुख और आशा की तरंगें रक्त की गति पर ही उत्तम प्रभाव डालेंगी और उसको शुद्ध तथा लाल करके स्वास्थ्य के सुप्रभाव को सम्पूर्ण देह में बाँट देगी, जिससे तुम अपने स्वास्थ्य को अच्छा और शरीर को व्याधियों से सुरक्षित रख सकोगे। प्रत्येक मनुष्य सुन्दरता, स्वास्थ्य और सुखमय जीवन की इच्छा करता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह सौ वर्ष तक जीवित रहे। वह सौ वर्ष तक उस प्रकार का जीवन नहीं चाहता जो रोते, झींकते और खाट पर पड़े हुये औषधियों का सेवन करते हुये कटे। वह ऐसा जीवन चाहता है जो काम करते हँसते-खेलते हुए बीते। वह उसी के लिए ईश्वर के सम्मुख सिर झुकाकर प्रार्थना करता है।

पश्येम शरदश्शतं जीवेम शरदश्शतं शृणुयाम शरदश्शतम्। प्रब्रवाम शरदश्शत-मदीनाः स्याम शरदश्शतम्।

(यजुर्वेद)

भावार्थ—मैं सौ वर्ष तक देखूँ, सौ वर्ष तक जीवित रहूँ, सौ वर्ष तक सुनूँ, और सौ वर्ष पर्यन्त बोलूँ, सौ वर्ष तक सुखी और स्वतन्त्र जीवन भोगूँ।

धार्मिक तथा लौकिक दोनों विषयों में मनुष्य उतना ही सफल होता है जितना कि उसका संकल्प दृढ़ होता है। यदि कोई किसी कार्य में असफल है, इसका कारण उसका दुर्भाग्य नहीं बल्कि उसके संकल्प की निर्बलता है। मनुष्य के अन्दर यह बहुमूल्य शक्ति ऐसी गुप्त है कि जो कोई इससे काम लेना शुरू कर देता है उसको ही वह महान और उच्च बना देती है। अटल संकल्प में एक बलवान शक्ति होती है, जो अपनी अनुकूल अवस्था को स्वयमेव अपनी ओर खींच लेती है। इस कारण यदि आज जीवन यात्रा में आप सफल होना चाहते हैं तो इस शक्ति को अन्दर उत्पन्न करें, क्योंकि जीवन की कठिनाइयों को दूर करने वाली यही एक शक्ति है। जिसमें यह शक्ति है, वे अपने विचारों को बलवान बनाकर दूर तक भेज सकते हैं। परन्तु जिनमें यह नहीं है वे ऐसा नहीं कर सकते, और यही कारण है कि कुछ मनुष्य निर्बल विचार वाले मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सफल यशस्वी और ऐश्वर्यवान हो जाते हैं। संकल्प शक्ति ही मन को एकाग्र करके मस्तिष्क की ओर विचारों के आकर्षण में सहायक होती है। आकर्षण का यह नियम है कि उसका झुकाव अपने सहधर्मी पदार्थ की ओर अधिकतर होता है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने सहधर्मी पदार्थ को अपनी ओर खींचता है। इसलिए जो मनुष्य जैसा बनना चाहता है, उसको दृढ़ संकल्प के साथ अपने अन्दर वैसे ही विचार उत्पन्न करने चाहिए और ये विचार अपने सहधर्मी को अवश्य अपनी ओर खींच लायेंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगा। इसलिए यदि तुम कोई काम करना चाहते हो तो तुम काम की छोटाई–बड़ाई की ओर न देखा करो, प्रत्युत अपने विचारों के न्यूनाधिक्य पर ध्यान रखा करो, क्योंकि काम में उसकी छोटाई या सुगमता के कारण सफलता नहीं होती, प्रत्युत उस काम के करने में तुम्हारी संकल्प शक्ति की न्यूनाधिकता के अनुसार सफलता होगी। जो बात तुम्हें करनी हो, उसके लिये ही विचार न किया करो और जब जिस काम को करने का विचार करो तो फिर उसको दूसरे निर्बल विचारों की तरंगों के नीचे दबने न दो और किसी ऐसे मनुष्य की सम्मति की परवाह न करो जो तुमको अपने विचारों की कठिनाइयों के कारण छोड़ देने का उपदेश कर रहा हो। ऐसे मनुष्य स्वयं निर्बल हृदय और निर्बल विचारों के होते हैं, इसलिए वे साधारण बातों को असम्भव बातों में गिन लेते हैं। और सच तो यह है कि ऐसे मनुष्यों के विचारों की शक्ति को कभी अनुभव नहीं किया, यदि किया हो तो कभी भी किसी के साहस और विचार को, (यदि वह विचार किसी बुराई के करने अथवा ऐसे कर्म करने का न हो जिसके करने से उसकी जान जोखिमें हों और मनुष्य समाज में अशान्ति उत्पन्न होने का भय हो)। व गिरने, वरन् उसका साहस तोड़ने के स्थान में अपने प्रबल विचारों को साथ मिलाकर और भी अधिक पुष्ट करते हों और सफलता के आदर्श

तक पहुँचाने में सहायता देते हैं। जब मनुष्य एक बार दृढ़ विचार करके खड़ा हो जाता है, तब चाहे उसके मार्ग में कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों वह सबको पार कर जाता है। कोई वस्तु उसको अपने उद्देश्य से नहीं रोक सकती, वरन् ऐसा पुरुषार्थी जो अपनी आभ्यन्तरिक शक्तियों से काम लेने लग जाता है, वही महान् पुरुष बन जाता है, और जो इनकी ओर ध्यान नहीं देते, वही अपनी जीवन यात्रा में पीछे रह जाते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती को साधारण सन्त से वर्तमान काल का ऋषि बनाने वाली यदि कोई वस्तु ही थी, तो वह केवल उनकी संकल्प शक्ति थी। समस्त भारतवर्ष उनके विचारों से विरोध रखता था, परन्तु जब वह मनस्वी एक बार अपने क्षेत्र पर आरूढ़ हो गया तो कोई भी मनुष्य उसके सम्मुख खड़ा न हो सका। इसका कारण उनकी अगाध विद्या ही न थी प्रत्युत दृढ़ संकल्प शक्ति और उस शक्ति के पूर्ण विश्वास का होना था। इसी शक्ति के भरोसे पंजाब केसरी महाराज रणजीत सिंह अटक नदी की छाती को घोड़ों के खुरपुटों से यह कहकर रौंद डाला और अपनी सेना को पार कर दिया 'जाके मन में अटक है वह ही अटक रहा है। जाके मन में अटक नहीं उसको अटक कहाँ।' सचमुच मन के अन्दर रुकावट नही तो फिर कोई ऐसी शक्ति नहीं जो हमको अपने उद्देश्य की पूर्ति से तथा अपने जीवन को सुखी और सार्थक बनाने से रोक सके।

दृढ़ और बलवान संकल्प शक्ति के कारण मनुष्य में ऐसी योग्यता आ जाती है कि वह अपने विचार को बहुत बड़ी शक्ति दे सकता है। अपने लक्ष्य पर फिर वह अपने विचार को उस समय तक स्थिर रखता है, जब तक उसका अभीष्ट प्राप्त नहीं होता। यदि किसी मनुष्य में आना–कानी प्रकृति है तो यह समझ लेना चाहिये कि उसकी संकल्प शक्ति निर्बल है और उससे कोई काम नहीं हो सकेगा। जो अपना दृढ़ विचार बनाकर फिर दूसरों को दृढ़ सम्मति के कारण उसको बदल देता है तो उससे भी उसकी संकल्प शक्ति का पता मिलता है मानो वह दूसरों की सम्मति का दास है, क्योंकि उसने अपने विवेचना शक्ति को खो दिया है। वह अपनी नहीं प्रत्युत दूसरों के विचारों के अनुसार कार्य कर रहा है। ऐसा करता हुआ वह दिन–पर–दिन अपनी विचार शक्ति को क्षीण कर रहा है, जिसके कारण प्रायः उसे अपने कामों में कठिनाई और असफलता का मुँह देखना पड़ेगा। इस कारण इस शक्ति महत्त्व को समझो, किन्तु दृढ़ दुराग्रह और उच्छृंखलता को हर विचार शक्ति न समझ लेना। विचार शक्ति और दुराग्रह आदि में महान् अन्तर है। पहिली, आचार की दृढ़ता और श्रेष्ठता का परिणाम है और दूसरी निर्बलता का फल है।

संकल्प शक्ति को पूरा विकास देने के लिए दृढ़ आत्म–विश्वास की आवश्यकता है और आत्म–विश्वास की दृढ़ता आस्तिकता अर्थात् ईश्वर–भक्ति से होती है। जब मनुष्य सर्वव्यापक,

सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ ईश्वर का सहारा लेकर सारे कार्यों को उसको समर्पण करके अनासक्ति और निष्काम मन से उसके लिए ही और अपने को केवल उसका एक कारण (साधन) समझकर कर्त्तव्यरूप से करता है तो उसकी स्वयं अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियाँ भी अगाध और असीम हो जाती हैं। यही कारण है कि ईश्वर-भक्तों द्वारा जो महान् कार्य और अद्भुत चमत्कार अनायास साधारणतया प्रकट हो जाते हैं, उनके अनुकरण करने में संसार की सारी भौतिक शक्तियाँ अपना पूरा बल लगाने पर भी असमर्थ रहती हैं।

क्योंकि इनके सारे संकल्प ईश्वर के समर्पण और उसकी प्रेरणा से होते हैं, इसलिए यह जो संकल्प करते हैं वही होता है। इनकी कोई इच्छा अनुचित अथवा स्वार्थमय नहीं होती, किन्तु सारे प्राणियों के कल्याणार्थ ईश्वरार्पण होती हैं, इसलिए वह जो इच्छा करते हैं वही होता है।

वह कोई शब्द अनुचित, अनावश्यक और असत्य नहीं बोलता, उसकी वाणी ईश्वर समर्पित होती है इसलिये उसकी वाणी से जो शब्द निकलते हैं वैसा ही होता है। उसके कार्य आवश्यक और स्वार्थ सिद्ध के लिये नहीं होते, किन्तु सब प्राणियों के हितार्थ निष्काम भाव से ईश्वर के आज्ञानुसार कर्त्तव्य रूप से होते हैं, इसलिए वह उनको पूरी लगन और दृढ़ता से करता है। संसार की कोई शक्ति उसको अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा सकती।

प्रस्तुत लेख 'हिन्दू धर्म के अध्यात्मवाद का विज्ञान से समन्वय-सिद्धान्त का तीसरा आधार है।

याद रखने योग्य सन्त-वाणी

जो तोकूँ काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोकूँ फूल के फूल हैं, बाकूँ हैं तिरशूल।।

कबिरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति क्रूर की, आठौ पहर उपाधि।।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय।।

कालि करै सौ आजु करि, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करेगो कब्ब?

साँच बरोबर तप नहीं, झूँठ बरोबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप।।

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

-बौद्ध सूत्र-सार-

- हम सभी को एक दिन यहाँ से जाना है, इस तथ्य को सामान्य लोग नहीं जानते। जो इस तथ्य को जानते हैं, उनके सारे कलह (विकार) शान्त हो जाते हैं।
- इस संसार में बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता। अबैर से ही बैर शान्त होता है। यही सनातन धर्म है।
- आलसी और अनुद्यमी होकर सौ साल जीने की अपेक्षा दृढ़ उद्यमशील होकर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है।
- फूलों की सुगन्ध वायु की विपरीत दिशा में नहीं जा सकती। न चन्दन की सुगन्ध, न तगर, चमेली, बेला की सुगन्ध ही जा सकती है। परन्तु सज्जनों की सुगन्ध विपरीत दिशा में भी फैलती है। अर्थात् सत्पुरुष (के पुण्याचरण) की सुगन्ध सभी दिशाओं में फैलती रहती है।
- अप्रमाद में रत होकर अपने चित्त की रक्षा करो। दलदल में फँसा हाथी जिस तरह अपने को स्वयं ही छुड़ाता है उसी तरह संकट से अपने को स्वयं ही उबार लो।
- सीमान्त का नगर जिस प्रकार अन्दर से और बाहर पूर्ण सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार अपनी (अन्दर और बाहर) कड़ी चौकसी रखें। कोई क्षण बगैर चौकसी का न जाने दें। क्योंकि जो एक क्षण भी चौकसी करने से चूकते हैं वे नरक में पड़े शोक किया करते हैं।
- जो (बाल्यावस्था में) ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, युवावस्था में धन नहीं कमाते, वे (वृद्धावस्था में) अपनी बीती बातों को दोहराते हुए जीर्ण धनुष के समान पड़े रहते हैं।
- जो धीर पुरुष शरीर से संयत होते हैं, वाणी से संयत होते हैं तथा मन से संयत होते हैं, वे ही परिसंयत होते हैं, सुसंयत होते हैं।

वरिष्ठ गुरु भाई श्री दुर्गा सिंह तोमर नहीं रहे।

यह सूचित करते हुये भारी दुःख हो रहा है कि हमारे पुराने गुरुभाई दुर्गा सिंह तोमर ग्वालियर वाले का 17 जुलाई को देहावसान हो गया है। वे 80 वर्ष की आयु पार कर चुके थे। वे काफी दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे किन्तु कुछ वर्ष पहले स्वास्थ्य में सुधार आया था किन्तु 17 जुलाई को शरीर का त्याग कर दिया। वे सन् 1965 के आसपास के दीक्षित शिष्यों में से थे।

दीक्षा के बाद से ही ध्यान योग में दृढ़ अभ्यास में लगे रहते थे। लम्बे-लम्बे अनुष्ठान भी करते रहते थे। लेखक श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में गुरु आज्ञा से रह रहे थे। 1978 में श्री तोमर भाई जी ने कई महीने अनुष्ठान किया। कुछ दिन शीशम झाड़ियों तथा कुछ दिन योग साधन आश्रम में रह कर अनुष्ठान किया। उन्होंने गुरुदेव के कई योग प्रचार कार्यक्रम किये जिनमें भोपाल, इन्दौर व ग्वालियर के मुख्य हैं। कई साधकों को गुरु चरणों से जोड़कर योग दीक्षा दिलाई। वे एक्साइज इन्स्पेक्टर के पद पर भर्ती हुये और गुरुदेव की कृपा से एक्साइज कमिश्नर के पद से सेवा निवृत्त हुये।

उन्होंने योग-पथ जैसे कई पुस्तकों की रचना की जिनमें अपने अनुभवों को भी साझा किया है। इन्होंने ग्वालियर से थोड़ी दूरी पर सिथौली नामक स्थान पर एक आश्रम भी बनाया है जहाँ श्री गणेश जी की भव्य मूर्ति तथा गुफा भी है।

उनके पीछे उनके पुत्र श्री यशपाल तोमर हैं जिन्होंने ग्वालियर में ही लॉ कालेज खोला है। श्री प्रभु जी परिवारी जनों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दें तथा श्री भाई तोमर जी को अपने चरणों में स्थान दें।

जय गुरुदेव की !

शोकाकुल
सभी साधकगण
श्री सिद्ध गुफा संवाई
एत्मादपुर, आगरा।

|| श्री रामलाल प्रभवे नमः ||

आश्रम समाचार–

सद्गुरु चन्द्रमोहनाय नमः

बड़े हर्ष का विषय है कि पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज योगाश्रम टेढर पुर (वाराणसी) का वार्षिक योग सम्मेलन 16 अक्टूबर से 20 अक्टूबर 2019 को धूमधाम से मनाया जा रहा है। इसमें कई विद्वान साधक आकर योग सिद्धान्तों पर चर्चा करेंगे। इस शिविर में वाराणसी, मीरजापुर व इलाहाबाद के साधकगण बड़ी संख्या में भाग लेने आ रहे हैं। अतः सभी गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि इस कार्यक्रम में आकर आध्यात्मिक लाभ लेकर अपने को कृतार्थ करें। जय गुरुदेव जी की।

भवदीय

अध्यक्ष (समिति)

प्रो. रामशरण सिंह (अ. प्राप्त B. H. U.)

वाराणसी

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित कर रहे हैं कि राजेन्द्र भारती (Ex-M. L. A.) दतिया के छोटे भाई रवि भारती का 12 अगस्त को सागर (म. प्र.) में देहान्त हो गया। वे कई महीनों से किडनी रोग से आक्रान्त थे। वे 55–56 वर्ष के थे।

श्री प्रभु जी से प्रार्थना है कि दुःखी परिवार को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें तथा रवि भारती को अपने चरणों में स्थान दें।

शोकाकुल

साधकगण

श्री सिद्ध गुफा संवाई

आगरा

योग-आसन

नावासन

विधि– इस आसन के अभ्यास में केवल मात्र इतना ही विचार रखना जरूरी है कि साधक पहले अधोमुख होकर लेट जाय व अपने हाथों को पीछे की ओर लम्बे फैलाकर हाथों के करतलों के तनाव से शरीर को इस ढंग से उठाये कि आगे से छाती व मुख खूब तनाव के साथ नाभि पर्य्यन्त अधिक से अधिक ऊपर को उठ जाए और पीछे की ओर दोनों पैर और जंघा भाग (पट्ट) पूरे-पूरे उठ जाए। देखने वालों को शरीर की आकृति बिल्कुल नाव के समान मालूम पड़े। इसी को नावासन कहते हैं।

अभ्यास– शनैः शनैः बढ़ाना चाहिए।

लाभ– मेद नाशक, अग्नि वर्धक, कोष्ठ बद्धता का निवारक है। साथ ही मूत्रा शय के रोगों को हितकर है।

श्री प्रभु-चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, बलिया, उ. प्र.

इक फूल हूँ अपना लो प्रभु, कहीं बिखर न जाऊँ मुरझाकर,
चरणों में जगह बनाकर के, दृग कमल चढ़ाऊँ करूणाकर,
1. कांटो से भरा हैं तन भगवन, कालिख से रंगा मन मंदिर है,
पाप की गठरी सिर पर है और, जुल्मी पाँव में जंजीर है,
अपने ही जाल में उलझ गया, कुछ कह न पाऊँ शरमाकर,
चरणों में जगह——
2. ये सांस का सरगम तेरा है, प्रभु तुमसे मिली है ये जिन्दगानी,
जहां में आकर बहक गया हूँ, दागदार मेरी करूण कहानी,
मन ऊब चुका जग उपवन से, किसे दर्द सुनाऊँ अपनाकर,
चरणों में जगह——
3– सुख-दु:ख के दोनो नदियों ने , कभी इधर किया, कभी उधर किया,
बहते उतराते डुबते मैं खुद, समझ न पाया किधर किया,
बचा है जीवन थोड़ा गुरुवर, अब तुझे बुलाऊँ अजमाकर,
चरणों में जगह——
4. गर मिलो, सुखद एहसास है, तेरी सूरत जिगर के पास हो,
ये ख्वाब नहीं हकीकत हो, कभी हिले न वह विश्वास हो,
राजेश बूंद तेरी रहमत का, बन तुममें समाऊँ रत्नाकर,
चरणों में जगह——
इक फूल हूँ——

दीपकों का सन्देश

अमा की घोर घनी अंधेरी निशा में तम का साम्राज्य चारो ओर फैला हुआ था ऐसे विकट साम्राज्य की जिसमें अपने और पराये की पहचान भी किसी को नही हो रही थी, छिन्न-भिन्न करने के लिए मिट्टी के कुछ दीपक अपना मुस्कराता और जगमगाता हुआ जीवन लेकर आगे आये और बोले अंधेरे में टकरा जाने वाले मनुष्यो-हम तुम्हें मार्ग दर्शन देने के लिए आये हैं।

" तमसो मा ज्योतिर्गमय" का महामंत्र हमारी ही जलती हुई ज्योति से लिखा गया है। हमारी भाषा को अगर तुम समझ सकते हो तो समझो-साधना का पथ हमारा पथ है। हम जलते है हँस-हँसकर जलते है इसलिए कि हमारी ज्योति के प्रकाश मे तुम अपने गन्तव्य से भटक न जाओ। जीवन का सार हमने दूसरों के हित मे हँस-हँसकर जल जाने में पाया है और शायद यही कारण है कि जलकर राख हो जाने के बाद भी हमें काजल की संज्ञा देकर असंख्य नरनारी अपनी-अपनी आँखों में धारण करते हैं। तुम भी अगर जन-जन की आँखों और हृदयों में छा जाना चाहते हो तो हमारी तरह ज्योति पुंज बनकर दूसरों के हित में जलना सीखो। कुर्बानी, त्याग, तपस्या, बलिदान और साधना यही साधक का धर्म होता है। हम साधक हैं तुम भी हमारी ही तरह साधक बनो-यही अमा की इस अंधियारी में हम तुम्हें अपना संदेश देने आये हैं।

--आचार्य यशोवर्धन

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

धीरो हर्ष शोकौ जहाति

तं दुर्दर्शं गूढ़ मनु प्रविष्टं,
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्म योगाधिगमेन देवं,
मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति।।

अर्थात् जो योग माया के पर्दे में छिपा हुआ सर्वव्यापी, सब के हृदय रूप गुहा में स्थित संसार रूप गहन वन में रहने वाला सनातन है। ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मा देव को शुद्धि बुद्धि युक्त धीर साधक अध्यात्म योग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।

... मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. बाबूलाल शर्मा के लिए ... आगरा-3 से मुद्रित एवं ... सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14388. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) बाबूलाल शर्मा